Prikchamukh
(Manikynandi, ca 800)

From: Hira Lal Jain Shastri: ***Pramaya Ratnmala***, Chaukhmbha VidyaBhavan, Varanasi (1964). In Hindi.

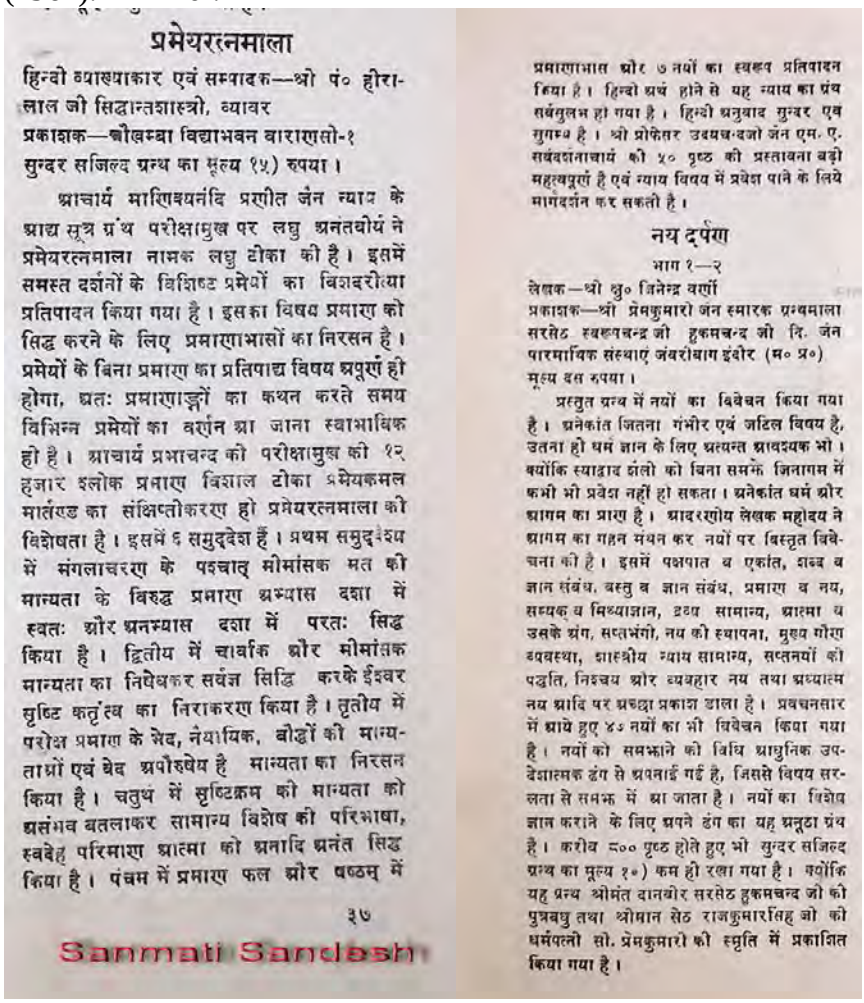

प्रमेयरत्नमाला

हिन्दी व्याख्याकार एवं सम्पादक—श्री पं० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, व्यावर
प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१
सुन्दर सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १५) रुपया।

आचार्य माणिक्यनंदि प्रणीत जैन न्याय के आद्य सूत्र ग्रंथ परीक्षामुख पर लघु अनंतवीर्य ने प्रमेयरत्नमाला नामक लघु टीका की है। इसमें समस्त दर्शनों के विशिष्ट प्रमेयों का विशदरीत्या प्रतिपादन किया गया है। इसका विषय प्रमाण को सिद्ध करने के लिए प्रमाणाभासों का निरसन है। प्रमेयों के बिना प्रमाण का प्रतिपाद्य विषय अपूर्ण ही होगा, अतः प्रमाणाङ्गों का कथन करते समय विभिन्न प्रमेयों का वर्णन आ जाना स्वाभाविक ही है। आचार्य प्रभाचन्द की परीक्षामुख की १२ हजार श्लोक प्रमाण विशाल टीका प्रमेयकमल मार्तण्ड का संक्षिप्तीकरण ही प्रमेयरत्नमाला की विशेषता है। इसमें ६ समुद्देश हैं। प्रथम समुद्देश में मंगलाचरण के पश्चात् मीमांसक मत की मान्यता के विरुद्ध प्रमाण अभ्यास दशा में स्वतः और अनभ्यास दशा में परतः सिद्ध किया है। द्वितीय में चार्वाक और मीमांसक मान्यता का निषेधकर सर्वज्ञ सिद्धि करके ईश्वर सृष्टि कर्तृत्व का निराकरण किया है। तृतीय में परोक्ष प्रमाण के भेद, नैयायिक, बौद्धों की मान्यताओं एवं वेद अपौरुषेय है मान्यता का निरसन किया है। चतुर्थ में सृष्टिक्रम की मान्यता को असंभव बतलाकर सामान्य विशेष की परिभाषा, स्वदेह परिमाण आत्मा को अनादि अनंत सिद्ध किया है। पंचम में प्रमाण फल और षष्ठम् में

Sanmati Sandesh

प्रमाणाभास और ७ नयों का स्वरूप प्रतिपादन किया है। हिन्दी अर्थ होने से यह न्याय का ग्रंथ सर्वसुलभ हो गया है। हिन्दी अनुवाद सुन्दर एवं सुगम्य है। श्री प्रोफेसर उदयचन्द्रजी जैन एम. ए. सर्वदर्शनाचार्य की ५० पृष्ठ की प्रस्तावना बड़ी महत्वपूर्ण है एवं न्याय विषय में प्रवेश पाने के लिये मार्गदर्शन कर सकती है।

नय दर्पण

भाग १—२
लेखक—श्री क्षु० जिनेन्द्र वर्णी
प्रकाशक—श्री प्रेमकुमारी जन स्मारक ग्रन्थमाला सरसेठ स्वरूपचन्द्र जी हुकमचन्द जी दि. जैन पारमार्थिक संस्थाएं जंवरीबाग इंदौर (म० प्र०)
मूल्य दस रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थ में नयों का विवेचन किया गया है। अनेकांत जितना गंभीर एवं जटिल विषय है, उतना ही धर्म ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यक भी। क्योंकि स्याद्वाद झंडी को बिना समझे जिनागम में कभी भी प्रवेश नहीं हो सकता। अनेकांत धर्म और आगम का प्राण है। आदरणीय लेखक महोदय ने आगम का गहन मंथन कर नयों पर विस्तृत विवेचना की है। इसमें पक्षपात व एकांत, शब्द व ज्ञान संबंध, वस्तु व ज्ञान संबंध, प्रमाण व नय, सम्यक् व मिथ्याज्ञान, द्रव्य सामान्य, आत्मा व उसके अंग, सप्तभंगी, नय की स्थापना, मुख्य गौण व्यवस्था, शास्त्रीय न्याय सामान्य, सप्तनयों की पद्धति, निश्चय और व्यवहार नय तथा अध्यात्म नय आदि पर अच्छा प्रकाश डाला है। प्रवचनसार में आये हुए ४७ नयों का भी विवेचन किया गया है। नयों को समझाने की विधि आधुनिक उपदेशात्मक ढंग से अपनाई गई है, जिससे विषय सरलता से समझ में आ जाता है। नयों का विशेष ज्ञान कराने के लिए अपने ढंग का यह अनूठा ग्रंथ है। करीब ८०० पृष्ठ होते हुए भी सुन्दर सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १०) कम ही रखा गया है। क्योंकि यह ग्रन्थ श्रीमंत दानवीर सरसेठ हुकमचन्द जी की पुत्रवधु तथा श्रीमान सेठ राजकुमारसिंह जी की धर्मपत्नी सौ. प्रेमकुमारी की स्मृति में प्रकाशित किया गया है।

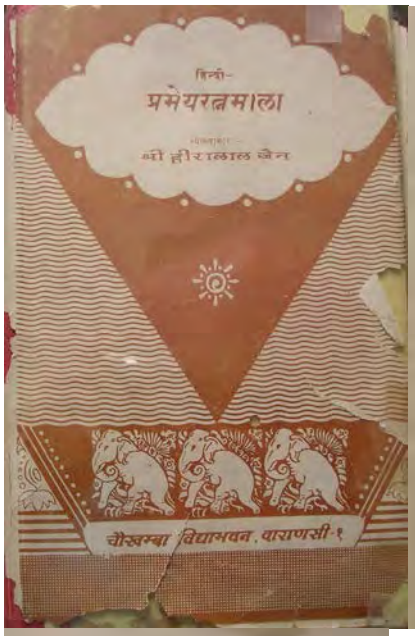

THE
VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA
107

PRAMEYARATNAMĀLĀ

OF

LAGHU ANANTAVĪRYA

A Commentary on

PARĪKS'ĀMUKHA SŪTRA

OF

MĀṆIKYANANDĪ

Edited with

Chintamani Hindi Commentary and Ancient Sanskrit notes

BY

PANDIT HIRA LAL JAIN
Siddhanta Shastri, Nyayatirtha

With An Introduction

By

Udaya Chandra Jain M. A.
Sarvadarshanacharya, Bauddhadarshanacharya, etc.
Prof. of Bauddha Darshana, B. H. U.

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1964

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला
१०७

श्रीमल्लघु-अनन्तवीर्यविरचिता

प्रमेयरत्नमाला

(श्रीमन्माणिक्यनन्दिप्रणीत-परीक्षामुखसूत्राणां लघुवृत्तिः)

प्राचीनटिप्पणसमन्वित 'चिन्तामणि' हिन्दीव्याख्योपेता

हिन्दीव्याख्याकार तथा सम्पादक

पण्डित श्री हीरालाल जैन
सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ

प्रस्तावना-लेखक

श्री उदयचन्द्र जैन, एम० ए०
सर्वदर्शन-बौद्धदर्शनाचार्य
प्राध्यापक-बौद्धदर्शन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२०
मूल्य : संशोधित मूल्य 20/-

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1
(INDIA)
1964
Phone : 3076

प्रस्तावना

दर्शन का अर्थ

मनुष्य विचारशील प्राणी है (Man is rational animal)। वह प्रत्येक कार्य के समय अपनी विचारशक्ति का उपयोग करता है। इसी विचार-शक्ति को विवेक कहते हैं। मनुष्य और पशुओं में भेद यही है कि पशुओं की प्रवृत्ति अविवेकपूर्वक होती है और मनुष्य की प्रवृत्ति विवेकपूर्वक होती है। यदि कोई मनुष्य अविवेकपूर्वक प्रवृत्ति करता है तो उसे केवल नाम से ही मनुष्य कहा जा सकता है, वास्तव में नहीं। अतः मनुष्य में जो स्वाभाविक विचारशक्ति है उसी का नाम दर्शन है।

जिसके द्वारा वस्तु का स्वरूप देखा जाय वह दर्शन[1] है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार—यह संसार नित्य है या अनित्य ? इसकी सृष्टि करनेवाला कोई है या नहीं ? आत्मा का स्वरूप क्या है ? इसका पुनर्जन्म होता है या यह इसी शरीर के साथ समाप्त हो जाती है ? ईश्वर की सत्ता है या नहीं ? इत्यादि प्रश्नों का समुचित उत्तर देना दर्शनशास्त्र का काम है। शास्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति दो धातुओं से हुई है—शास् (आज्ञा करना) तथा शंस् (वर्णन करना)। शासन अर्थ में शास्त्र शब्द का प्रयोग धर्मशास्त्र के लिए किया जाता है। वंशक शास्त्र (बोधक शास्त्र) वह है जिसके द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का वर्णन किया जाय। धर्मशास्त्र कर्तव्य और अकर्तव्य का प्रतिपादन करने के कारण पुरुष-परतन्त्र है। किन्तु दर्शनशास्त्र वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन करने से वस्तु-परतन्त्र है।

'सत्' की व्याख्या करने में भारतीय दार्शनिकों ने विषय की ओर उतना ध्यान नहीं दिया है जितना विषयी (आत्मा) की ओर। आत्मा को अनात्मा से पृथक करना दार्शनिकों का प्रधान कार्य था। इसीलिए 'आत्मा को जानो' (आत्मानं विद्धि) यह भारतीय दर्शन का मूलमन्त्र रहा है। यही कारण है कि प्रायः समस्त भारतीय दर्शन आत्मा की सत्ता पर प्रतिष्ठित हैं और धर्म

१. दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्।
२ शासनात् शंसनात् शास्त्रं शास्त्रमित्यभिधीयते।

तथा दर्शन में घनिष्ठ सम्बन्ध भी प्रारम्भ से ही चला आ रहा है। दर्शनशास्त्र के द्वारा सुचिन्तित आध्यात्मिक तथ्यों के ऊपर ही भारतीय धर्म की दृढ़ प्रतिष्ठा है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने अपनी तात्त्विक दृष्टि से जिन-जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया उनको 'दर्शन' शब्द के द्वारा कहा गया। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यदि दर्शन का अर्थ साक्षात्कार है तो फिर विभिन्न दर्शनों में पारस्परिक भेद का कारण क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर यही हो सकता है कि अनन्तधर्मात्मक वस्तु को विभिन्न ऋषियों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से देखने का प्रयत्न किया और तदनुसार ही उसका प्रतिपादन किया है। अतः यदि हम दर्शन शब्द के अर्थ को भावनात्मक साक्षात्कार के रूप में ग्रहण करें तो उपर्युक्त प्रश्न का समाधान हो सकता है। क्योंकि विभिन्न ऋषियों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से वस्तु के स्वरूप को जानकर उसी का बार-बार चिन्तन और मनन किया, तथा इसके फलस्वरूप उन्हें अपनी-अपनी भावना के अनुसार वस्तु के स्वरूप का दर्शन हुआ।

दर्शन का प्रयोजन

समस्त भारतीय दर्शनों का लक्ष्य इस संसार के दुःखों से छुटकारा पाना अर्थात् मुक्ति या मोक्ष पाना है। इस संसार में प्रत्येक प्राणी आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन प्रकार के दुःखों से पीड़ित है। अतः उक्त दुःखों से निवृत्ति का उपाय बतलाना दर्शनशास्त्र का प्रधान लक्ष्य है। अतः दुःख, दुःख के कारण, मोक्ष और मोक्ष के कारणों को खोजकर साधारण जन के लिए उनका प्रतिपादन करना दर्शनशास्त्र का उद्देश्य है। जिस प्रकार चिकित्साशास्त्र में रोग, रोगनिदान, आरोग्य और औषधि इन चार तत्त्वों का प्रतिपादन आवश्यक है उसी प्रकार दर्शनशास्त्र में भी दुःख, दुःख के कारण, मोक्ष और मोक्ष के कारणों का प्रतिपादन करना आवश्यक है[1]।

१. दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।—सांख्यकारिका, का० १
यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूहम्—रोगो रोगहेतुः आरोग्यं भैषज्यमिति। एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहम्। तद् यथा— संसारः संसारहेतुः मोक्षः मोक्षोपाय इति। —व्यासभाष्य २।१५

भारतीय दर्शनों का श्रेणी-विभाग

भारतीय दर्शन को आस्तिक और नास्तिक के भेद से दो भागों में विभक्त किया जाता है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त इन छह दर्शनों को आस्तिक और जैन, बौद्ध तथा चार्वाक दर्शन को नास्तिक कहा जाता है। लेकिन भारतीय दर्शनों को आस्तिक और नास्तिक इन दो विभागों में विभक्त करने वाला कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नहीं है। अतः यदि हम भारतीय दर्शनों का विभाग वैदिक और अवैदिक दर्शनों के रूप में करें तो अधिक उपयुक्त होगा। वेद की परम्परा में विश्वास रखनेवाले न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त ये छह वैदिक दर्शन हैं। तथा वेद को प्रमाण न मानने के कारण चार्वाक, बौद्ध और जैन ये तीन अवैदिक दर्शन हैं।

भारतीय दर्शनों का क्रमिक विकास

भारतीय दर्शनकाल को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—सूत्र-काल और वृत्तिकाल। सूत्रकाल में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्त दर्शनों के सूत्रों की रचना हुई। सूत्रों की रचना से यह तात्पर्य नहीं है कि उसी समय से उस दर्शन का आरम्भ होता है, अपि तु ये सूत्र अनेक शताब्दियों के चिन्तन और मनन के फलस्वरूप निष्पन्न हुए हैं। ये सूत्र परस्पर में परिचित हैं। वेदान्त सूत्रों में मीमांसा का उल्लेख है। न्यायसूत्र वैशेषिकसूत्रों से परिचित है। सांख्यसूत्र में अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है। इन सूत्रों का रचनाकाल ४०० विक्रम पूर्व से २०० विक्रम पूर्व तक स्वीकार किया जाता है। सूत्र संक्षिप्त एवं गूढार्थ होते हैं। अतः उनके अर्थ को सरल करने के लिए भाष्य, वार्तिक तथा टीकाग्रन्थों की रचना हुई। यह काल वृत्तिकाल कहलाता है। शबर, कुमारिल, वात्स्यायन, प्रशस्तपाद, शङ्कर, रामानुज, वाचस्पति और उदयन आदि आचार्य इसी युग में हुए हैं। वृत्तिकाल ३०० विक्रम से १५०० विक्रम तक माना जाता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि उपनिषदों में समग्र भारतीय दर्शन के बीज पाये जाते हैं और उपनिषदों के अनन्तर भारतीय दर्शनों का क्रमिक विकास हुआ है। उपनिषदों का प्रधान मन्त्र था 'तत्त्वमसि'। उस समय सबके सामने यह प्रश्न था कि इस तत्त्व का साक्षात्कार किस प्रकार किया जाय। कुछ लोगों ने कहा कि प्रकृति और पुरुष (भौतिक जगत् तथा जीव) के विभिन्न गुणों

को न जानने के कारण ही यह संसार है और उसके यथार्थ स्वरूप को जान लेने पर स्वं (जीव) उत् (ब्रह्म) स्वरूप हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है। इस ज्ञान का नाम सांख्य हुआ। किन्तु केवल बौद्धिक साक्षात्कार से काम नहीं चल सकता था। अतः उस तत्त्व को व्यावहारिक रूप से प्रत्यक्ष करने के लिए ध्यान, धारणा आदि अष्टाङ्ग योग की उत्पत्ति हुई। बाद में प्रकृति और पुरुष (आत्मा और अनात्मा) के विभिन्न गुणों के निर्धारण एवं विवेचन के लिए वैशेषिक दर्शन की उत्पत्ति हुई और इस विवेचन की शास्त्रीय पद्धति के निरूपण के लिए न्याय का आविर्भाव हुआ। न्याय के सूक्ष्म तर्क के द्वारा आत्मतत्त्व का यथार्थ साक्षात्कार न देखकर दार्शनिकों ने पुनः वेद के कर्मकाण्ड की मीमांसा (विवेचना) का प्रारम्भ कर दिया। यह मीमांसादर्शन कहलाया। अन्त में कर्मकाण्ड से आध्यात्मिक तृप्ति प्राप्त न होने के कारण पुनः ज्ञानकाण्ड की मीमांसा होने लगी जिसका फल वेदान्त निकला। इस प्रकार वैदिक-दर्शनों में सांख्य दर्शन सब से प्राचीन है और उसके बाद अन्य दर्शनों की क्रमशः उत्पत्ति और विकास हुआ है।

अवैदिक दर्शनों में चार्वाक दर्शन ही सब से प्राचीन माना जाता है। उपनिषद् काल में भी चार्वाकों के सिद्धान्तों का प्रचार दृष्टिगोचर होता है। उस समय कुछ लोग मरण के अनन्तर आत्मा का अभाव मानते थे[1]। चार्वाक-मत के संस्थापक बृहस्पति नामक आचार्य के सूत्रों का उल्लेख ब्रह्मसूत्र के शांकर भाष्य, गीता की नीलकण्ठी, श्रीधरी तथा मधुसूदनी, अद्वैतब्रह्मसिद्धि, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में मिलता है।

वैदिक दर्शन की परम्परा में परिस्थितिवश उत्पन्न होनेवाली बुराइयों तथा त्रुटियों को दूर करने के लिए सुधारक के रूप में महात्मा बुद्ध के बाद बौद्ध दर्शन का आविर्भाव हुआ। अध्यात्मशास्त्र की गुत्थियों को तर्क की सहायता से सुलझाना बुद्ध का उद्देश्य न था, किन्तु दुःखमय संसार से प्राणियों का उद्धार करना ही उनका प्रधान लक्ष्य था। बुद्ध ने देखा कि लोग पारलौकिक जीवन की समस्याओं में उलझकर ऐहिक जीवन की समस्याओं को भूलते जा रहे हैं। इसीलिए बुद्ध ने सरल आचार मार्ग का प्रतिपादन करने के लिए अष्टाङ्गमार्ग (मध्यम मार्ग) का उपदेश दिया और आत्मा तथा शरीर भिन्न हैं या अभिन्न ? लोक शाश्वत है या अशाश्वत ? इत्यादि प्रश्नों को अव्याकृत (अकथनीय)

१ न प्रेत्य संज्ञास्ति। —बृहदारण्यक उपनिषद् ४।५।१३

बतलाया। इस प्रकार बुद्ध ने जिन बातों को अव्याकृत कहकर टाल दिया था, बाद में बौद्ध दार्शनिकों ने उन्हीं बातों पर विशेष ऊहापोह कर के बौद्ध दर्शन को प्रतिष्ठित किया। बौद्ध दर्शन के विकास में वसुबन्धु, दिग्नाग, धर्मकीर्ति, नागार्जुन आदि आचार्यों का प्रमुख स्थान है। इन आचार्यों ने इतर दर्शनों के सिद्धान्तों के निराकरणपूर्वक स्वसिद्धान्तों का व्यापक रूप से समर्थन किया है।

जैन दर्शन की मान्यतानुसार जैन दर्शन की परम्परा अनादिकाल से प्रवाहित होती चली आ रही है। इस युग में आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर महावीर पर्यन्त २४ तीर्थंकरों ने क्रमशः से जैन धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जो लोग जैन दर्शन को अनादि नहीं मानना चाहते हैं उन्हें कम से कम जैन दर्शन को उतना प्राचीन तो मानना ही पड़ेगा कि जितना प्राचीन और कोई दूसरा दर्शन है। आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, सिद्धसेन अकलङ्क, हरिभद्र विद्यानन्दी, माणिक्यनन्दी, प्रभाचन्द्र, वादिदेवसूरि और हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने जैन दर्शन के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। कुछ लोग जैन दर्शन और बौद्ध दर्शन को वैदिक दर्शन की शाखा के रूप में ही स्वीकार करते हैं। उनकी ऐसी मान्यता ठीक नहीं है, क्योंकि ऐतिहासिक खोजों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि श्रमण-परम्परा के अनुयायी उक्त दोनों धर्मों और दर्शनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है।

उक्त दर्शनों के जिन विशेष सिद्धान्तों का परीक्षामुख और प्रमेयरत्नमाला में प्रतिपादन किया गया है, पाठकों की और विशेष रूप से विद्यार्थियों की जानकारी के लिए उनका यहां संक्षेप में दिग्दर्शन कराया जाता है।

चार्वाक दर्शन

वैदिककाल में यज्ञानुष्ठान तथा तपस्या के आचरण पर विशेष बल दिया जाता था। ऐहिक बातों की अपेक्षा पारलौकिक बातों की चिन्ता मनुष्यों को विशेष थी। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप चार्वाक दर्शन का उदय हुआ। इस दर्शन का सब से प्राचीन नाम लोकायत है। साधारण लोगों की तरह आचरण करने के कारण इन लोगों का 'लोकायत' यह नाम पड़ा। चारु (सुन्दर) वाक् (बातों) को अर्थात् लोगों को प्रिय लगने वाली बातों को कहने के कारण, अथवा आत्मा, परलोक आदि की चर्वण (भक्षण) कर जाने के कारण इनका नाम चार्वाक हुआ। बृहस्पति चार्वाक दर्शन के संस्थापक माने जाते हैं। अतः इस दर्शन का नाम बार्हस्पत्य दर्शन भी है।

चार्वाक लोगों को प्रिय लगने वाली बातें इस प्रकार कहते थे—जब तक जियो सुख से जियो, ऋण लेकर घृत, दूध आदि पियो। ऋण चुकाने की चिन्ता भी मत करो, क्योंकि शरीर के नष्ट हो जाने पर पुनः आगमन (जन्म) नहीं होता है।[1]

चार्वाकों का सिद्धान्त है कि पृथिवी, अप्, तेज और वायु इन चार भूतों का संघात ही आत्मा है, मरण ही मुक्ति है, परलोक नहीं है, इत्यादि। बाह्यदृष्टि प्रधान होने से चार्वाक ने केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना है, अनुमान आदि को नहीं। अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों से जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वही सत्य है, अन्य कुछ नहीं। चार्वाकों का प्रमुख सिद्धान्त है देहात्मवाद। उनका कहना है कि जिस प्रकार महुआ आदि पदार्थों के गलन और अन्य वस्तुओं के संमिश्रण से मदिरा बनती है और उसमें मादक शक्ति स्वयं आ जाती है, उसी प्रकार पृथिवी, जल, अग्नि और वायु इन चार भूतों के विशिष्ट संयोग से शरीर की उत्पत्ति के साथ चैतन्य शक्ति भी उत्पन्न हो जाती है। अतः चैतन्य आत्मा का धर्म न होकर शरीर का ही धर्म है। चार्वाकों का यह देहात्मवाद का सिद्धान्त युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि संसार में सजातीय कारण से सजातीय कार्य की ही उत्पत्ति देखी जाती है, विजातीय की नहीं। जब भूतचतुष्टय स्वयं अचेतन है तो वह चैतन्य की उत्पत्ति में कारण कैसे हो सकता है। यह कहना भी ठीक नहीं है कि चैतन्यशक्ति शरीर के नाश के साथ ही नष्ट हो जाती है, क्योंकि पूर्वभव की स्मृति, तत्काल्जात बालक की स्तनपान में प्रवृत्ति, भूत-प्रेत आदि के दर्शन और जातिस्मरण आदि से पुनर्जन्म की सिद्धि होती है।

इसी प्रकार चार्वाक का केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानना उचित नहीं है क्योंकि केवल प्रत्यक्ष से परोक्ष अर्थों का ज्ञान सम्भव नहीं। और अनुमान के माने बिना स्वयं चार्वाक का भी काम नहीं चलता, क्योंकि अनुमान के अभाव में वह प्रमाण और अप्रमाण की व्यवस्था, दूसरे पुरुष की बुद्धि का ज्ञान और परलोक आदि का निषेध कैसे कर सकेगा।

बौद्ध दर्शन

महात्मा बुद्ध ने विशेष रूप से धर्म का ही उपदेश दिया है, दर्शन का नहीं। फिर भी बुद्ध के बाद बौद्ध दार्शनिकों ने बुद्ध के वचनों के आधार से दार्शनिक

१. यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥ —सर्वदर्शनसंग्रह

तत्त्वों को खोज निकाला। बौद्धधर्म के तीन मौलिक सिद्धान्त हैं—१ सर्वमनित्यम्—सब कुछ अनित्य है। २ सर्वमनात्मम्—सब पदार्थ आत्मा (स्वभाव) से रहित हैं। और ३ निर्वाणं शान्तम्—निर्वाण ही शान्त है। बौद्ध दर्शन के कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं—

अनात्मवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणभङ्गवाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद, अन्यापोह आदि। बौद्ध दर्शन में आत्मा का स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नहीं है किन्तु रूप वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कन्धों के समुदाय को ही आत्मा माना गया है। प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ है हेतु और प्रत्यय की अपेक्षा से पदार्थों की उत्पत्ति। इसी को सापेक्षकारणतावाद भी कहते हैं[1]।

बौद्ध दर्शन के चार प्रमुख सम्प्रदाय हैं जिनके अपने-अपने विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्त हैं[2]—१ वैभाषिक—बाह्यार्थप्रत्यक्षवाद, २ सौत्रान्तिक—बाह्यानुमेयवाद, ३ योगाचार—विज्ञानवाद और ४ माध्यमिक—शून्यवाद।

प्रस्तुत ग्रन्थ में बौद्ध दर्शन के कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों का वर्णन देखने को मिलता है। बौद्धों ने अविसंवादि तथा अज्ञात अर्थ को प्रकाशित करने वाले ज्ञान को प्रमाण माना है और कल्पना तथा भ्रान्ति से रहित ज्ञान को प्रत्यक्ष माना है[3]। वस्तु में नाम, जाति, गुण, क्रिया आदि की योजना करना कल्पना है[4]। दूसरे शब्दों में शब्दसंसर्ग के योग्य प्रतिभासवाली प्रतीति को कल्पना कहते हैं[5]। पूर्वापर के अनुसन्धान (एकत्व) पूर्वक शब्दसंयुक्ताकार अथवा अन्तर्जल्पाकार प्रतीति को भी कल्पना माना गया है[6]। प्रत्यक्ष ज्ञान कल्पना से रहित अर्थात्

१. हेतुप्रत्ययापेक्षो भावानामुत्पादः प्रतीत्यसमुत्पादार्थः।
—माध्यमिककारिकावृत्ति पृ. ७
२. मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगद्
योगाचारमते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्तोऽखिलः।
अर्थोऽस्ति क्षणिकस्वसाधनुमितो बुद्धेति सौत्रान्तिकः
प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुरं च सकलं वैभाषिको भाषते॥—मानमेयोदय पृ. ३००
३. कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षम्। —न्यायबिन्दु
४. नामजात्यादियोजना कल्पना। ५. अभिलापसंसर्गयोग्यप्रतिभासप्रतीतिः कल्पना। —न्यायबिन्दु।
६. पूर्वापरमनुसन्धाय शब्दसंयुक्ताकारा प्रतीतिरन्तर्जल्पाकारा वा कल्पना। —तर्कभाषा

निर्विकल्पक होता है। तिमिर (आँख का रोग) आशुभ्रमण आदि के द्वारा ज्ञान में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। प्रत्यक्ष को भ्रम से भी रहित होना चाहिए[1]।

प्रत्यक्ष के चार भेद हैं—इन्द्रियप्रत्यक्ष, मानसप्रत्यक्ष, स्वसंवेदनप्रत्यक्ष और योगिप्रत्यक्ष। स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह इन्द्रियप्रत्यक्ष है। मनोविज्ञान[2] (मानसप्रत्यक्ष) की उत्पत्ति इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियज्ञान के अनन्तर (द्वितीयक्षणवर्ती) विषय के द्वारा होती है। मानसप्रत्यक्ष की उत्पत्ति में इन्द्रियज्ञान उपादान कारण होता है और इन्द्रियज्ञान का अनन्तर विषय सहकारी कारण होता है। सब चित्त और चैत्तों का जो आत्मसंवेदन होता है वह स्वसंवेदन[3] है। सामान्यज्ञान को चित्त कहते हैं और विशेष ज्ञान को चैत्त कहते हैं[4]। भूतार्थ (प्रमाणप्रतिपन्न अर्थ) की भावना के प्रकर्ष के पर्यन्त से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह योगिप्रत्यक्ष[5] कहलाता है। दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग ये चार आर्य सत्य भूतार्थ हैं। उनकी भावना (बार-बार चिन्तवन) करते-करते एक समय ऐसा आता है जब भावना अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है और तब भाव्यमान अर्थ का साक्षात्कारी ज्ञान उत्पन्न होता है। यही योगिप्रत्यक्ष है। यह चारों प्रकार का प्रत्यक्ष निर्विकल्पक (अनिश्चयात्मक) है। सूत्रकार (माणिक्यनन्दी) ने प्रमाण के लक्षण में जो व्यवसायात्मक पद दिया है वह बौद्धों के द्वारा माने गए इन प्रत्यक्षों में प्रमाणता के निराकरण के लिए है, क्योंकि जो अनिश्चयात्मक है वह प्रमाण नहीं हो सकता है। प्रमाण को व्यवसायात्मक होना आवश्यक है।

चार प्रकार के दार्शनिकों में से वैभाषिक और सौत्रान्तिक बाह्य पदार्थ की सत्ता मानते हैं। दोनों में भेद इतना ही है कि वैभाषिक बाह्य अर्थ का प्रत्यक्ष स्वीकार करते हैं और सौत्रान्तिक उसको अनुमेय (अनुमानगम्य) मानते हैं।

---

१. तिमिराशुभ्रमणनौयानसंक्षोभाद्यनाहितविभ्रमं ज्ञानं प्रत्यक्षम्।
—न्यायबिन्दु

२. स्वविषयानन्तरविषयसहकारिणेन्द्रियज्ञानेन समनन्तरप्रत्ययेन जनितं तन्मनोविज्ञानम्। —न्यायबिन्दु

३. सर्वचित्तचैत्तानामात्मसंवेदनं स्वसंवेदनम्। —न्यायबिन्दु

४. चित्तं वस्तुमात्रग्राहकं ज्ञानम्। चित्तेभवाश्चैत्ताः वस्तुनो विशेषरूपग्राहकाः सुखदुःखोपेक्षालक्षणाः। —तर्कभाषा

५. भूतार्थभावनाप्रकर्षपर्यन्तजं योगिज्ञानं चेति।

योगाचार का दूसरा नाम विज्ञानाद्वैतवादी है, क्योंकि इनके मत में विज्ञानमात्र ही तत्त्व है, अर्थ की सत्ता बिल्कुल भी नहीं है। इसी प्रकार माध्यमिकों को शून्यैकान्तवादी या शून्यवादी कहते हैं, क्योंकि इनके यहाँ शून्य ही तत्त्व है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि माध्यमिकों का शून्य तत्त्व वैसा नहीं है जैसा इतर मत वालों ने समझ रक्खा है। प्रत्येक पदार्थ के विषय में चार कोटियों से विचार किया जा सकता है, जैसे सत्, असत्, उभय और अनुभय। माध्यमिकों का कहना है कि तत्त्व चतुष्कोटि से रहित है[1] और ऐसे तत्त्व को शून्य शब्द से कहा गया है। दूसरे प्रकार से उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद को ही शून्य कहा है[2]।

इन विज्ञानाद्वैतवादियों और शून्यैकान्तवादियों के मत का निराकरण करने के लिए प्रमाण के लक्षण में अर्थ पद दिया गया है। प्रमाण को अर्थ का ग्राहक होना चाहिए, न कि ज्ञान का अथवा शून्य का।

बौद्धों ने ज्ञान की उत्पत्ति में अर्थ को कारण माना है तथा ज्ञान में अर्थाकारता भी मानी है। इस अर्थाकारता के द्वारा ही वे ज्ञान के प्रतिनियत विषय की व्यवस्था करते हैं। सूत्रकार ने उनकी इस मान्यता का खण्डन किया है। अर्थ ज्ञान का कारण नहीं है, क्योंकि अर्थ के अभाव में भी ज्ञान की उत्पत्ति देखी जाती है। जैसे केशोण्डुकज्ञान। केशोण्डुकज्ञान क्या है इस विषय में किसी भी टीकाकार ने कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की है। कुछ विद्वान् इसका अर्थ केशों में उण्डुक (कीड़ों अथवा मच्छरों) का ज्ञान करते हैं। किन्तु मेरी समझ से केशोण्डुकज्ञान केशरूप अर्थ के सद्भाव में नहीं होता है अपितु अर्थाभाव में ही होता है। सूत्रकार ने अर्थ के साथ ज्ञान के अन्वय-व्यतिरेक का अभाव बतलाया है। यदि केशों के सद्भाव में केशोण्डुक ज्ञान माना जायगा तब तो अर्थ के साथ ज्ञान का अन्वय-व्यतिरेक सिद्ध ही हो जायगा। यहाँ कोई कह सकता है कि केशोण्डुकज्ञान में केश मिथ्याज्ञान के कारण होते हैं न कि सम्यग्ज्ञान के। इसका उत्तर यह है कि यदि केशरूप अर्थ कहीं मिथ्याज्ञान का कारण हो सकता है तो अन्यत्र सम्यग्ज्ञान का भी कारण हो सकता है। सूत्रकार का भी अभिप्राय यही

---

१. न सन् नासन् न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।
चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः॥—माध्यमिककारिका १।७

२. यश्च प्रतीत्यभावो भावानां शून्यतेति सा प्रोक्ता।
प्रतीत्य यश्च भावो भवति हि तस्यास्वभावत्वम्॥
—विग्रहव्यावर्तिनी श्लो० २२

है कि अर्थ ज्ञानमात्र का कारण नहीं है, न कि सम्यग्ज्ञान का। सूत्रकार ने तदुत्पत्ति और तदाकारता के द्वारा प्रतिनियत अर्थ की व्यवस्था का भी खण्डन किया है, क्योंकि ज्ञान में तदुत्पत्ति और तदाकारता के मानने पर भी विषय के प्रतिनियम में व्यभिचार आता है। अतः ज्ञान अपने अपने ज्ञानावरण की क्षयोपशमरूप योग्यता के द्वारा ही प्रतिनियत अर्थ की व्यवस्था करता है।

बौद्धों ने प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण माने हैं। अनुमान तीन रूप (पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति) वाले हेतु से उत्पन्न होता है। हेतु तीन हैं—स्वभाव, कार्य और अनुपलब्धि। और ये तीनों ही हेतु तीन रूपवाले हैं। उन्होंने हेतु का लक्षण त्रैरूप्य माना है। वृत्तिकार (अनन्तवीर्य) ने त्रैरूप्य का निरास करके अन्यथानुपपत्ति को ही हेतु का लक्षण सिद्ध किया है। बौद्धों के यहाँ हेतु और दृष्टान्त ये दो ही अनुमान के अवयव हैं। वे पक्ष आदि के प्रयोग को अनावश्यक मानते हैं किन्तु हेतु के समर्थन को आवश्यक मानते हैं। सूत्रकार ने उनकी इस मान्यता का भी खण्डन किया है। जब बौद्ध त्रिरूप हेतु के कथन के बाद उसका समर्थन आवश्यक मानते हैं तो फिर पक्ष का प्रयोग भी क्यों आवश्यक नहीं है। अन्यथा समर्थन को ही अनुमान का एक मात्र अवयव मान लेना चाहिए, हेतु को नहीं।

अर्थ की सत्ता मानने वाले वैभाषिक और सौत्रान्तिकों के अनुसार अर्थ दो प्रकार का है—स्वलक्षण और सामान्यलक्षण। इनमें से स्वलक्षण प्रत्यक्ष का विषय है और सामान्यलक्षण अनुमान का। प्रत्येक वस्तु में दो प्रकार के तत्त्व होते हैं—एक असाधारण और दूसरा साधारण। वस्तु का जो असाधारण तत्त्व है वही स्वलक्षण[1] है। स्वलक्षण को हम विशेष भी कह सकते हैं। स्वलक्षण सन्निधान (सामीप्य) और असन्निधान (दूरी) के द्वारा ज्ञान में प्रतिभास भेद कराता है अर्थात् पास से उसका स्पष्ट ज्ञान होता है और दूर से अस्पष्ट[2]।

---

१. स्वमसाधारणं लक्षणं तत्त्वं स्वलक्षणम्। —न्यायबिन्दु पृ० १५

२. यस्यार्थस्य सन्निधानासन्निधानाभ्यां ज्ञानप्रतिभासभेदस्तत् स्वलक्षणम्।
—न्यायबिन्दु पृ० १६

स्वलक्षणमित्यसाधारणं वस्तुरूपं देशकालाकारनियतम्। घटादिरुदकाद्याहरणसमर्थोऽर्थो देशकालाकारनियतः पुरः प्रकाशमानोऽनित्यत्वाद्यनेकधर्मोदासीनः प्रवृत्तिविषयो विजातीयसजातीयव्यावृत्तः स्वलक्षणमित्यर्थः। —तर्कभाषा पृ० ११

यह स्वलक्षण सजातीय और विजातीय दोनों से व्यावृत्त होता है। और जो स्वलक्षण से भिन्न है वह सामान्यलक्षण[1] है। प्रत्येक गोव्यक्ति गोस्वलक्षण है और अनेक गायों में जो गोत्वरूप एक सामान्य की प्रतीति होती है वह सामान्यलक्षण है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि बौद्धों ने सामान्य को मिथ्या माना है और उसको विषय करने वाले अनुमान को प्रमाण माना है। किन्तु मिथ्या सामान्य को विषय करने के कारण अनुमान भी भ्रान्त होना चाहिए, फिर उसमें प्रमाणता कैसे ? बौद्धों ने इसका उत्तर यह दिया है कि अनुमान परम्परा से वस्तु (स्वलक्षण) की प्राप्ति में कारण होने से प्रमाण है। जैसे एक व्यक्ति को मणिप्रभा में मणिबुद्धि हुई और दूसरे पुरुष को प्रदीपप्रभा में मणिबुद्धि हुई। ये दोनों ज्ञान मिथ्या हैं, फिर भी मणिप्रभा में होने वाली मणिबुद्धि को मणि की प्राप्ति में कारण होने से प्रमाण ही मानना चाहिए। उसी प्रकार अनुमान-बुद्धि भी वस्तु की प्राप्ति में परम्परा से कारण होने से प्रमाण है। मणिप्रभा में मणिबुद्धि इस प्रकार होती है[2]—एक कमरे के अन्दर आले में एक मणि रक्खा हुआ है। रात्रि का समय है। कमरे का दरवाजा बन्द है। दरवाजे में एक छिद्र है और मणि की प्रभा उस छिद्र में व्याप्त हो रही है। दरवाजे के सामने कुछ दूर पर खड़ा हुआ व्यक्ति उस छिद्र में व्याप्त मणिप्रभा को ही मणि समझ लेता है। किन्तु जब वह मणि को उठाने के लिए जाता है तब वहाँ मणि को न पाकर दरवाजा खोलकर अन्दर चला जाता है, और इस प्रकार मिथ्याज्ञान से भी वस्तु (मणि) को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार अनुमान के द्वारा सामान्य को जानकर व्यक्ति सामान्य ज्ञान के अनन्तर स्वलक्षण को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार अनुमानबुद्धि परम्परा से स्वलक्षण की प्राप्ति में कारण होती है। वृत्तिकार ने बौद्धों की उक्त मान्यता का खण्डन किया है। जब सामान्य कोई वस्तु ही नहीं है तब उसको विषय करने वाला अनुमान परम्परा से भी वस्तु की प्राप्ति नहीं करा सकता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय विशेष (स्वलक्षण) ही है, सामान्य नहीं, उनकी ऐसी मान्यता भी ठीक नहीं है क्योंकि बौद्धों ने जिस प्रकार के विनाशशील,

---

१. अन्यत् सामान्यलक्षणम्। —न्यायबिन्दु पृ० १७

२. मणिप्रदीपप्रभयोः मणिबुद्ध्याभिधावतोः।
मिथ्याज्ञानाविशेषेऽपि विशेषोऽर्थक्रियां प्रति॥ —प्रमाणवार्तिक २।५७

अनित्य, परस्पर में असम्बद्ध और निरंश परमाणुरूप विशेषों की कल्पना की है उनकी सिद्धि किसी भी प्रमाण से नहीं होती है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सामान्य और विशेषरूप अर्थ की ही प्रतीति होती है, न कि केवल विशेषरूप अथवा सामान्यरूप की।

बौद्धों ने अवयवों से भिन्न अवयवी नहीं माना है। किन्तु अवयवों के समुदाय का नाम ही अवयवी है। आतान-वितान-विशिष्ट तन्तुओं के समुदाय का नाम ही पट है। तन्तु समुदाय को छोड़कर पट कोई पृथक् वस्तु नहीं है। यदि पट की तन्तुओं से पृथक् सत्ता है तो एक सेर सूत से बने हुए वस्त्र का भार सवा सेर होना चाहिए, क्योंकि उसमें अवयवी का भार भी सम्मिलित है। इसी प्रकार परमाणुओं को परस्पर में असम्बद्ध माना है, क्योंकि निरंश होने से एक परमाणु का दूसरे परमाणुओं से सम्बन्ध न तो एकदेश से बनता है और न सर्वदेश से।

बौद्धों के यहाँ विनाश को पदार्थ का स्वभाव माना गया है अर्थात् पदार्थ प्रतिक्षण स्वभाव से ही विनष्ट होता रहता है। घट उत्पत्ति के समय से ही विनाशस्वभाव वाला है, अतएव वह अपने विनाश के लिए मुद्गरादि कारणों की अपेक्षा नहीं रखता है। किन्तु स्वतः एव प्रतिक्षण विनष्ट होता रहता है। दूसरी बात यह है कि बौद्धों के यहाँ विनाश निरन्वय माना गया है, अर्थात् विनष्ट क्षण का उत्पन्न क्षण से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। प्रथम क्षणवर्ती घट का सर्वथा विनाश हो जाने पर द्वितीय क्षण में एक नवीन ही घट उत्पन्न होता है और सदृश अपर अपर क्षणों की उत्पत्ति होने से तथा उनमें काल का व्यवधान न होने से भ्रमवश 'यह वही घट है' ऐसी एकत्व की प्रतीति हो जाती है। विनाश को पदार्थ का स्वभाव मानने के कारण बौद्धों ने प्रत्येक पदार्थ को क्षणिक माना है और 'सर्वं क्षणिकं सत्त्वात्' इस अनुमान से सब पदार्थों में क्षणिकत्व की सिद्धि की है। अर्थक्रियाकारिता का नाम सत् है। जो पदार्थ कोई अर्थक्रिया करे वही सत्[1] कहलाता है। यह अर्थक्रिया नित्य पदार्थ में नहीं बनती है, क्योंकि वह न तो क्रम से अर्थक्रिया कर सकता है और न युगपत्। इस प्रकार अर्थक्रिया के अभाव में नित्यपदार्थ असत् सिद्ध होता है। वृत्तिकार ने बौद्धों की उक्त मान्यताओं का विस्तार से खण्डन किया है।

१. अर्थक्रियासामर्थ्यलक्षणत्वाद् वस्तुनः। तदेव च परमार्थसत्। —न्यायबिन्दु

बौद्धों की एक मान्यता यह भी है कि शब्द का वाच्य अर्थ नहीं है, क्योंकि शब्द और अर्थ में कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके अनुसार शब्द का वाच्य अपोह या अन्यापोह है। अन्यापोह का अर्थ है विवक्षित वस्तु से अन्य का अपोह (निषेध)। जैसे गोशब्द का वाच्य गोव्यक्ति न होकर अगोव्यावृत्ति है। गो से भिन्न अन्य समस्त पदार्थ अगो हैं। गोशब्द गाय में अगो की व्यावृत्ति करता है। अर्थात् यह हाथी नहीं है, घोड़ा नहीं है, मनुष्य नहीं है, इत्यादि प्रकार से अगो का निषेध करता है और अगो का निषेध होने पर जो शेष बचता है उसका ज्ञान स्वतः (शब्द के बिना) ही हो जाता है। इसी प्रकार बौद्ध शब्द को वक्ता के अभिप्राय का सूचक भी मानते हैं, क्योंकि घटशब्द में ऐसी कोई स्वाभाविक योग्यता नहीं है जिससे वह जलधारणसमर्थ घटरूप अर्थ को ही कहे। वह (घटशब्द) वक्ता की इच्छानुसार अश्व में घटशब्द का संकेत करके अश्व को भी कह सकता है। यदि कोई व्यक्ति घटशब्द के द्वारा अश्व को कहना चाहता है तो वह वैसा संकेत करके वैसा कह सकता है। इसमें कोई भी बाधा नहीं है[1]।

सूत्रकार ने आगम प्रमाण के लक्षण में जो अर्थज्ञान पद दिया है उसके द्वारा अन्यापोह और अभिप्रायसूचन का निरास किया गया है। शब्द का वाच्य अन्यापोह या अभिप्रायसूचन नहीं है किन्तु अर्थ है। अन्यापोह को शब्द का वाच्य मानने पर अनेक विप्रतिपत्तियाँ आती हैं। जो इस प्रकार है—

गोशब्द के सुनने पर उसी समय सामने स्थित गायरूप अर्थ में प्रवृत्ति होती है। यदि गोशब्द का वाच्य गाय न होकर अगोव्यावृत्ति हो तब तो गोशब्द के सुनने पर कुछ देर बाद गाय का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि अगोव्यावृत्ति करने में कुछ समय तो लगेगा ही। दूसरी बात यह है कि अगोव्यावृत्ति करते समय भी गो का ज्ञान आवश्यक है। गौ के ज्ञान के बिना अगो का ज्ञान कैसे होगा और अगो का ज्ञान न होने पर उसकी व्यावृत्ति भी कैसे होगी। अतः द्रविड प्राणायाम को छोड़कर गोशब्द का वाच्य सीधा गायरूप अर्थ ही मानना युक्तिसंगत है। इसी प्रकार अभिप्रायसूचन को भी शब्द का वाच्य मानना

१. यदि घट इत्ययं शब्दः स्वभावादेव कम्बुग्रीवाकारं जलधारणसमर्थं पदार्थमभिदधाति तत्कथं संकेतान्तरमपेक्ष्य पुरुषेच्छया तुरगादिकमभिदध्यात्।''''''वक्तुरभिप्रायं सूचयेयुः शब्दाः। —तर्कभाषा
नान्तरीयकताऽभावाच्छब्दानां वस्तुभिः सह।
नार्थसिद्धिस्ततस्ते हि वक्त्रभिप्रायसूचकाः॥ —प्रमाणवार्तिक १।२१५

ठीक नहीं है। यदि किसी शब्द से किसी के अभिप्राय का पता चल भी गया तो उससे क्या लाभ होगा। और अभिप्राय को जानने के बाद भी तो अर्थ का ज्ञान मानना ही पड़ेगा। अतः प्रारंभ में ही शब्द के द्वारा अर्थ का ज्ञान मानना अनुभवसिद्ध है।

सूत्रकार ने 'भाव्यतीतयोः मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम्' (परीक्षामुख ३।६२) इस सूत्र के द्वारा बौद्ध दार्शनिक प्रज्ञाकर गुप्त के भाविकारणवाद और अतीतकारणवाद की समालोचना की है। प्रज्ञाकर गुप्त ने भावी मरण को अरिष्ट का और अतीत जागृद्बोध को उद्बोध का कारण माना है। किन्तु काल के व्यवधान में कार्यकारणभाव संभव नहीं है। तथा यह तो और भी विचित्र बात है कि कार्य आज हो चुका है और उसका कारण छह महीने बाद हो[1]।

बौद्ध प्रमाण और फल में अभेद मानते हैं। उनके यहाँ वही ज्ञान प्रमाण है और वही फल। प्रत्येक ज्ञान में दो बातें पाई जाती हैं—विषयाकारता और विषयबोध। विषयाकारता का नाम प्रमाण है और विषयबोध का नाम फल है। एक ही ज्ञान में इन दो बातों की व्यवस्था भी वे व्यावृत्ति के द्वारा करते हैं। घटज्ञान घटाकार और घटबोधरूप है। वह अघटाकार से व्यावृत्त होने के कारण प्रमाण तथा अघटबोध से व्यावृत्त होने के कारण फल माना गया है। सूत्रकार ने इस मान्यता का खण्डन करते हुए कहा है कि बौद्ध जिस प्रकार अफल (अघटबोध) की व्यावृत्ति से फल की कल्पना करते हैं उसी प्रकार अन्य सजातीय फल की व्यावृत्ति से उसे अफल क्यों न माना जाय। एक घटज्ञान

१. अविद्यमानस्य कारणमिति कोऽर्थः? तदनन्तरभाविनी तस्य सत्ता, तदेतदानन्तर्यमुभयापेक्षयापि समानम्। यथैव भूतापेक्षया तथैव भाव्यपेक्षयापि। न चानन्तर्यमेव तत्त्वे निबन्धनम्, व्यवहितस्य कारणत्वात्।
गाढसुप्तस्य विज्ञानं प्रबोधे पूर्ववेदनात्।
जायते व्यवधानेन कालेनेति विनिश्चितम्॥
तस्मादन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वं निबन्धनम्।
कार्यकारणभावस्य तद् भाविन्यपि विद्यते॥
भाविना च भावो भाविनापि लक्ष्यत एव। मृत्युप्रयुक्तमरिष्टमिति लोके व्यवहारः, यदि मृत्युर्न भविष्यन्न भवेदेवम्भूतमरिष्टमिति।
—प्रमाणवार्तिकालङ्कार पृ. १७६

में दूसरे घटज्ञान की व्यावृत्ति भी तो है, अतः उसे अफल भी मानना चाहिए। इसी प्रकार अप्रमाण की व्यावृत्ति से किसी ज्ञान को प्रमाण मानने पर उसमें दूसरे प्रमाण की व्यावृत्ति होने से अप्रमाण का प्रसङ्ग भी प्राप्त होता है। अर्थात् यदि अप्रमाण की व्यावृत्ति होने से प्रत्यक्ष को प्रमाण माना जाय तो उसमें अनुमान प्रमाण की व्यावृत्ति होने से अप्रमाण भी मानना चाहिए[1]।

सांख्यदर्शन

सांख्यदर्शन वैदिकदर्शनों में अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। तत्त्वों की संख्या (गिनती) के कारण इसका नाम सांख्य पड़ा ऐसा कहा जाता है। किन्तु संख्या का एक दूसरा भी अर्थ है—विवेकज्ञान। इस दर्शन में प्रकृति और पुरुष के विवेकज्ञान पर बल दिया गया है, इसलिए इसे सांख्य कहते हैं। इस अर्थ में सांख्य शब्द का प्रयोग अधिक युक्तिसंगत है। सांख्य द्वैतवादी दर्शन है, क्योंकि यह प्रकृति और पुरुष इन दो तत्त्वों को मौलिक मानता है। प्रकृति से महान् आदि २३ तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। अतः सांख्यदर्शन में सब मिलाकर २५ तत्त्व माने गए हैं। सांख्यों ने प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तवचन (आगम) इन तीन प्रमाणों को माना है। आप्तवचन का तात्पर्य आप्त (विश्वस्त) पुरुष और श्रुति (वेद) दोनों से है। अतः आगम में पौरुषेय और अपौरुषेय दोनों प्रकार के ग्रन्थों का समावेश किया गया है। यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि प्राचीन सांख्यों ने ईश्वर को नहीं माना है, इसलिए उनके मत से वेद ईश्वर की रचना न होने से अपौरुषेय है। किन्तु कालान्तर में ईश्वर की सत्ता भी स्वीकार कर ली गई। अतः सांख्य के निरीश्वर सांख्य और सेश्वर सांख्य ऐसे दो भेद हो गए। सेश्वर सांख्य को ही योगदर्शन के नाम से कहते हैं। ईश्वर की सत्ता मानकर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के इन आठ अङ्गों के प्रतिपादन करने में ही योगदर्शन की विशेषता है[2]।

वृत्तिकार ने सांख्यों के सामान्य रूप तत्त्व प्रधान या प्रकृति की विस्तार से विवेचना की है। प्रधान से २३ तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। कारणरूप प्रधान

१. इह नीलादेरर्थाद् ज्ञानं द्विरूपमुत्पद्यते-नीलाकारं नीलबोधस्वरूपं च। तत्रानीलाकारव्यावृत्त्या नीलाकारं ज्ञानं प्रमाणम्। अनीलबोधव्यावृत्त्या नीलबोधस्वरूपं प्रमितिः। सैव फलम्। —तर्कभाषा
२. आप्तश्रुतिराप्तवचनं तु। —सांख्यकारिका

'अव्यक्त' कहलाता है और कार्यरूप 'व्यक्त'। इनमें से व्यक्त हेतुमान, अनेक, अव्यापक, सक्रिय, अनेक, आश्रित, लिङ्ग (प्रलय काल में लीन होने वाला) सावयव और परतन्त्र है।[1] लेकिन अव्यक्त में उक्त बातों का विपर्यय पाया जाता है। अर्थात् वह अहेतुमान्, एक, व्यापक, निष्क्रिय, अनाश्रित, अलिङ्ग, निरवयव और स्वतन्त्र है। ऊपर व्यक्त और अव्यक्त में वैधर्म्य बतलाया गया है। किन्तु व्यक्त और अव्यक्त में कुछ बातों की अपेक्षा साधर्म्य भी है। ये दोनों ही त्रिगुण (सत्त्व, रज और तम गुण वाले), अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मी (उत्पत्ति करने रूप धर्म वाले) हैं। परन्तु पुरुष में त्रिगुण आदि का विपर्यय पाया जाता है। अर्थात् वह त्रिगुणातीत, विवेकी, अविषय, असामान्य, चेतन और अप्रसवधर्मी है। यद्यपि पुरुष प्रधान से इन बातों में असमान है, किन्तु अहेतुमान्, व्यापक, निष्क्रिय आदि बातों में प्रधान के समान भी है[2]। जिस प्रकार कुछ बातों की अपेक्षा से व्यक्त और अव्यक्त में साधर्म्य है तथा दूसरी बातों की अपेक्षा से उनमें वैधर्म्य है, उसी प्रकार कुछ बातों की अपेक्षा से प्रधान और पुरुष में साधर्म्य तथा दूसरी बातों की अपेक्षा से उनमें वैधर्म्य है।

प्रकृति से पहले बुद्धि उत्पन्न होती है, इसे महान् कहते हैं। महान् से मैं सुन्दर हूँ, मैं सुखी हूँ इत्यादि अहङ्कार की उत्पत्ति होती है। अहङ्कार से चक्षु, घ्राण, रसना, त्वक् और श्रोत्र ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ, तथा मन और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँच तन्मात्रायें, इस प्रकार कुल सोलह तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। पुनः पाँच तन्मात्राओं से पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच महाभूतों की उत्पत्ति होती है[3]। इस प्रकार प्रकृति से सब मिलाकर २३ तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इनमें से प्रकृति कारण ही है, कार्य नहीं। महान्, अहङ्कार और पाँच तन्मात्रायें कार्य और कारण दोनों हैं, शेष सोलह (ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच

१. हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥ —सांख्यकारिका

२. त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ॥ —सांख्यकारिका

३. प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ —सांख्यकारिका

महाभूत) केवल कार्य हैं, कारण नहीं। पुरुष न किसी का कारण है और न कार्य।[1]

सांख्यों का मत है कि प्रकृति त्रिगुणात्मक है तथा सब पदार्थों में सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का अन्वय देखा जाता है, इसलिए सब पदार्थ प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। सब पदार्थों में परिमाण भी देखा जाता है। उत्पन्न होने वाले सब पदार्थ परिमित हैं, अतः उनका एक अपरिमित कारण मानना आवश्यक है। और जो अपरिमित कारण है वही प्रकृति है। इत्यादि हेतुओं से वे प्रकृति की सिद्धि करते हैं।[2]

सांख्य किसी पदार्थ की उत्पत्ति और नाश नहीं मानते हैं किन्तु आविर्भाव और तिरोभाव मानते हैं। उत्पन्न पदार्थ उत्पत्ति के पहले ही कारण में अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है और कारण उसे केवल व्यक्त कर देते हैं। जैसे अन्धकार में पहले से स्थित घटादि पदार्थों को दीपक व्यक्त कर देता है। इसी का नाम आविर्भाव है। इसी प्रकार घट के नाश का अभिप्राय यह है कि वह अपने कारण मिट्टी में छिप गया, न कि सर्वथा नष्ट हो गया। इसका नाम तिरोभाव है। अतः कारण में कार्य की सत्ता मानने के कारण सांख्य को सत्कार्यवादी कहा जाता है।

सत्कार्यवाद की सिद्धि उन्होंने निम्न पाँच हेतुओं से की है—१ असत् की उत्पत्ति नहीं की जा सकती है, २ प्रतिनियत कार्य के लिए प्रतिनियत कारण का ग्रहण किया जाता है, ३ सभी कारणों से सभी कार्यों की उत्पत्ति नहीं देखी जाती है, ४ समर्थकारण ही शक्यकार्य को करता है, अशक्य को नहीं और ५ पदार्थों में कार्य कारण भाव देखा जाता है।[3]

सांख्यों के अनुसार प्रकृति केवल कर्त्री है और पुरुष केवल भोक्ता है। प्रकृति के समस्त कार्य पुरुष के लिए होते हैं, पुरुष प्रकृति का अधिष्ठाता है, इत्यादि

१. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥ —सांख्यकारिका

२. भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य ॥
कारणमस्त्यव्यक्तम्। —सांख्यकारिका

३. असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥ —सांख्यकारिका

कारणों से पुरुष की सिद्धि की गई है। जन्म, मरण और इन्द्रियों का प्रतिनियम देखा जाता है और सबकी एक कार्य में एक साथ प्रवृत्ति नहीं होती है, अतः पुरुष अनेक है[1]।

यद्यपि अचेतन होने से प्रकृति अन्धी है और निष्क्रिय होने से पुरुष लँगड़ा है, फिर भी अन्धे और लँगड़े पुरुषों के संयोग की भाँति प्रकृति और पुरुष के संयोग से प्रकृति कार्य करने में समर्थ हो जाती है।

वृत्तिकार ने सांख्य की उक्त मान्यताओं में से कुछ का प्रत्यक्षरूप से और कुछ का अप्रत्यक्षरूप से खण्डन किया है। पहिली बात तो यही है कि उक्त प्रकार के प्रधान की सिद्धि किसी प्रमाण से नहीं होती है। घटादि पदार्थों में सत्त्व, रज और तम इन गुणों का अन्वय भी नहीं पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि अमूर्त आकाश और मूर्त पृथिवी आदि की उत्पत्ति एक कारण से कैसे हो सकती है। यदि किसी कारण से विजातीय कार्य की भी उत्पत्ति मानी जाय तो अचेतन भूतों से चेतन की उत्पत्ति भी मानना चाहिए[2]।

सांख्यों का ज्ञान प्रकृति का परिणाम होने से अचेतन है और अचेतन होने के कारण अस्वसंवेदी है। सूत्रकार ने प्रमाण के लक्षण में जो 'स्व' पद दिया है उससे सांख्यों के अस्वसंवेदी ज्ञान में प्रमाणता का निरास हो जाता है।

योग (न्याय-वैशेषिक) दर्शन

न्याय और वैशेषिक इन दोनों दर्शनों का योग नाम से उल्लेख किया गया है। सूत्रकार या वृत्तिकार ने कहीं भी न्याय या वैशेषिक का उल्लेख नहीं किया है। संभव है कि योगों का कोई पृथक् ग्रन्थ रहा हो, किन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। योग के नाम से जो कुछ कहा गया है वह सब न्याय और वैशेषिक दर्शनों में मिलता है। कुछ बातों को छोड़कर न्याय और

सङ्घातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥ —सांख्यकारिका

१. जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥ —सांख्यकारिका

२. पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥ —सांख्यकारिका

वैशेषिक दर्शनों में समानता भी पाई जाती है। शिवादित्य (११ वीं शताब्दी) के 'सप्तपदार्थी' में उक्त दोनों दर्शनों का समन्वय किया गया है। मालूम पड़ता है कि दोनों के योग (जोड़ी) को योग नाम दे दिया गया और, इसीलिए सूत्रकार और वृत्तिकार ने दोनों का 'योग' इस नाम से उल्लेख किया है।

न्यायदर्शन का विषय न्याय का प्रतिपादन करना है। न्याय का अर्थ है विभिन्न प्रमाणों के द्वारा अर्थ की परीक्षा करना[1]। इन प्रमाणों के स्वरूप का वर्णन करने से इस दर्शन को न्यायदर्शन कहते हैं। इसका नाम वादविद्या भी है, क्योंकि इसमें वाद में प्रयुक्त हेतु, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान आदि का वर्णन किया गया है। न्यायसूत्र के रचयिता गौतम ऋषि हैं, इन्हीं का नाम अक्षपाद है। वैशेषिक दर्शन के सूत्रकार महर्षि कणाद हैं। विशेष नामक पदार्थ की विशिष्ट कल्पना के कारण इस दर्शन का नाम वैशेषिक हुआ, ऐसा माना जाता है।

नैयायिकों ने प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, और निग्रहस्थान ये सोलह पदार्थ माने हैं। वैशेषिकों ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात पदार्थ माने हैं। तथा पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नौ द्रव्य माने हैं। नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमान ये चार प्रमाण मानते हैं, किन्तु वैशेषिक प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण मानते हैं। नैयायिकों ने आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म), फल, दुःख और अपवर्ग (मुक्ति) ये बारह प्रमेय माने हैं।

न्याय और वैशेषिक दोनों ने ही सन्निकर्ष को प्रमाण माना है। इसलिए सूत्रकार ने प्रमाण के लक्षण में अज्ञानरूप सन्निकर्ष में प्रमाणता के निराकरण के लिए 'ज्ञान' पद दिया है। इन्द्रिय और पदार्थ के सम्बन्ध को सन्निकर्ष कहते हैं। इन्द्रिय और अर्थ दोनों ही अचेतन हैं, अतः उनका सम्बन्ध सन्निकर्ष भी अचेतन और अज्ञानरूप ही होगा। फिर वह प्रमाण कैसे हो सकता है। सन्निकर्ष के संयोग, संयुक्तसमवाय, संयुक्तसमवेतसमवाय आदि छह भेद माने हैं। सूत्रकार ने बतलाया है कि जिस प्रकार चक्षु और रस में संयुक्त-समवायरूप सन्निकर्ष होने पर भी वह प्रमा को उत्पन्न नहीं करता है, उसी

१. प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः। —वात्स्यायन न्यायभाष्य १।१।१

प्रकार चक्षु और रूप का संयुक्तसमवायरूप सन्निकर्ष भी प्रमा की उत्पत्ति का कारण नहीं है। अतः सन्निकर्ष को प्रमाण मानना ठीक नहीं है।

न्याय और वैशेषिक दोनों ही ईश्वर की सत्ता मानकर उसके द्वारा संसार की सृष्टि मानते हैं। पृथिवी, पर्वत आदि पदार्थ किसी बुद्धिमान पुरुष (ईश्वर) के द्वारा उत्पन्न किए गए हैं, क्योंकि वे कार्य हैं। इस अनुमान के द्वारा वे पृथिवी आदि कार्यों का एक ऐसा कर्ता सिद्ध करते हैं जो व्यापक, सर्वज्ञ और समर्थ है। ऐसा जो कर्ता है वही ईश्वर है। कारण को समवायि, असमवायि और निमित्त के भेद से तीन प्रकार का माना गया है। कार्य जिसमें समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न हो वह समवायि कारण है। पट तन्तुओं में समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, अतः तन्तु पट के समवायि कारण हैं। समवायि कारण को हम उपादान कारण भी कह सकते हैं। समवायि कारण द्रव्य ही होता है। तन्तु-संयोग पट का असमवायि कारण है। असमवायि कारण संयोगरूप गुण ही होता है। इनकी असमवायि कारण की कल्पना एक विशिष्ट कल्पना है। इन दोनों कारणों के अतिरिक्त जुलाहा, तुरी, वेम, शलाका आदि पट के निमित्त कारण हैं। ईश्वर भी पृथिवी आदि कार्यों की उत्पत्ति में निमित्त कारण होता है। वृत्तिकार ने कार्यत्व हेतु में अनेक प्रकार से दूषण देकर न्याय-वैशेषिकाभिमत सृष्टिकर्तृत्व का विशेषरूप से खण्डन किया है।

न्याय-वैशेषिक दोनों ही आत्मा को व्यापक मानते हैं। कुछ लोग आत्मा को अणुपरिमाण (षटकणिकामात्र) मानते हैं। वृत्तिकार ने उक्त दोनों मान्यताओं का युक्तिपूर्वक निराकरण करके आत्मा को स्वदेहपरिमाण सिद्ध किया है।

वैशेषिकों ने द्रव्य, गुण और कर्म इन तीन पदार्थों को स्वयं असत् मानकर भी सत्ता नामक सामान्य के सम्बन्ध से सत् माना है। वृत्तिकार ने उनकी इस मान्यता का निराकरण करते हुए कहा है कि जब द्रव्यादि स्वयं असत् हैं तो सत्ता के संबंध से भी सत् नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार द्रव्यत्व के सम्बन्ध से द्रव्य, गुणत्व के सम्बन्ध से गुण और कर्मत्व के सम्बन्ध से कर्म की मान्यता भी नहीं बनती है। इस प्रकार वैशेषिकों का विशेष (द्रव्य, गुण और कर्म) तथा सामान्य को परस्पर में स्वतंत्र मानना ठीक नहीं है। विशेष और सामान्य स्वतंत्ररूप से प्रमाण के विषय नहीं हैं, किन्तु उभयात्मक पदार्थ ही प्रमाण का विषय है।

वैशेषिकों का विशेष पदार्थ एक सरीखे पदार्थों में भेद कराता है। यह विशेष नित्य द्रव्यों—पृथिवी, जल, तेज और वायु के परमाणुओं में तथा

आकाश, दिशा, काल, आत्मा और मन में रहता है। अयुतसिद्ध (अपृथक् सिद्ध) पदार्थों में अर्थात् अवयव-अवयवी में, गुण-गुणी में, क्रिया-क्रियावान् में, सामान्य-सामान्यवान् में और विशेष-विशेषवान् में जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं।

न्याय और वैशेषिक दोनों ने ही हेतु के पाँच रूप (पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति, अबाधितविषयत्व और असत्प्रतिपक्षत्व) माने हैं। तथा अनुमान के प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन ये पाँच अवयव माने हैं। वृत्तिकार ने हेतु के पाञ्चरूप्य का निराकरण करके साध्य के साथ अविनाभाव को ही हेतु का लक्षण सिद्ध किया है। और सूत्रकार ने पाँच अवयवों की मान्यता का खण्डन करके बाद में प्रतिज्ञा और हेतु ये दो ही अनुमान के अवयव सिद्ध किये हैं। किन्तु अल्पज्ञों को बोध कराने के लिए यथावश्यक उदाहरणादिक के प्रयोग को भी स्वीकार किया है।

न्याय और वैशेषिक दोनों ने ही प्रमाण को अस्वसंवेदी माना है। उनकी मान्यता है कि ज्ञान स्वयं अपना प्रत्यक्ष नहीं करता है किन्तु दूसरे ज्ञान के द्वारा उसका प्रत्यक्ष होता है। ये दोनों ही गृहीतग्राही धारावाहिक ज्ञान को भी प्रमाण मानते हैं। सूत्रकार ने प्रमाण के लक्षण में 'स्व' पद के द्वारा अस्वसंवेदी ज्ञान में प्रमाणता का निराकरण किया है। जो ज्ञान स्वयं अपने को नहीं जानता है वह अर्थ को कैसे जान सकता है। गृहीतग्राही धारावाहिक ज्ञान में प्रमाणता के निराकरण के लिए प्रमाण के लक्षण में 'अपूर्व' विशेषण दिया गया है। सूत्रकार ने अस्वसंवेदी और गृहीतार्थ इन दोनों ज्ञानों को प्रमाणाभास बतलाया है।

न्याय और वैशेषिक दोनों ने ही अर्थ और आलोक को ज्ञान का कारण माना है। सूत्रकारने उनकी इस मान्यता का निराकरण करते हुए बतलाया है कि ज्ञान का अर्थ और प्रकाश के साथ अन्वय-व्यतिरेक न होने से वे ज्ञान के कारण नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार प्रमाण से फल को सर्वथा भिन्न मानकर समवाय सम्बन्ध से 'इस प्रमाण का यह फल है' ऐसी प्रमाण और फल की जो व्यवस्था की गई है उसका निराकरण करके सूत्रकार ने सिद्ध किया है कि प्रमाण से फल कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न, न कि सर्वथा भिन्न।

मीमांसादर्शन

मीमांसा शब्द का अर्थ है किसी वस्तु के स्वरूप का यथार्थ विवेचन। मीमांसा के दो भेद हैं-कर्ममीमांसा और ज्ञानमीमांसा। यज्ञों की विधि तथा

अनुष्ठान का वर्णन कर्ममीमांसा का विषय है। जीव, जगत् और ईश्वर के स्वरूप तथा सम्बन्ध का निरूपण ज्ञानमीमांसा का विषय है। कर्ममीमांसा को पूर्व-मीमांसा तथा ज्ञानमीमांसा को उत्तरमीमांसा भी कहते हैं। किन्तु वर्तमान में कर्ममीमांसा के लिए केवल मीमांसा शब्द का प्रयोग किया जाता है और ज्ञानमीमांसा को 'वेदान्त' शब्द से कहा जाता है।

महर्षि जैमिनि मीमांसादर्शन के सूत्रकार हैं। मीमांसादर्शन के इतिहास में कुमारिल भट्ट का युग सुवर्णयुग के नाम से कहा जाता है। भट्ट के अनुयायी भाट्ट कहलाते हैं। मीमांसा के आचार्यों में प्रभाकर मिश्र की भी बड़ी प्रसिद्धि है। प्रभाकर के अनुयायी प्राभाकर कहे जाते हैं। इस प्रकार मीमांसा में भाट्ट और प्राभाकर ये दो पृथक् सम्प्रदाय हुए हैं। सूत्रकार ने मीमांसक, प्राभाकर और जैमिनीय इन तीन नामों से इस दर्शन का उल्लेख किया है।

प्राभाकर पदार्थों की संख्या ८ मानते हैं—

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, सादृश्य और संख्या। भाट्टों के अनुसार पदार्थ ५ हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और अभाव। वैशेषिक द्रव्य नौ ही मानते हैं किन्तु भाट्ट अन्धकार और शब्द ये दो द्रव्य अधिक मानते हैं। प्राभाकर प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान और अर्थापत्ति ये पाँच प्रमाण मानते हैं और भाट्ट अभाव सहित छह प्रमाण मानते हैं।

मीमांसकों के अनुसार ज्ञान का प्रत्यक्ष नहीं होता है। ज्ञान न तो स्वयं वेद्य है और न ज्ञानान्तर से वेद्य है। अतएव वह परोक्ष है। मीमांसकों के इस परोक्षज्ञान में प्रमाणता का निराकरण करने के लिए सूत्रकार ने प्रमाण के लक्षण में 'स्व' पद दिया है।

ज्ञान में प्रमाणता और अप्रमाणता कैसे आती है इस विषय में विवाद है। न्याय-वैशेषिक दोनों को परतः, सांख्य दोनों को स्वतः तथा मीमांसक प्रामाण्य को स्वतः और अप्रामाण्य को परतः मानते हैं। वृत्तिकार ने 'तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च' इस सूत्र की व्याख्या में विशेषरूप से मीमांसकों की मान्यता का निराकरण किया है।

मीमांसकों का कहना है कि जिन कारणों से ज्ञान उत्पन्न होता है उनके अतिरिक्त अन्य किसी कारण की प्रमाणता की उत्पत्ति में अपेक्षा नहीं होती है। उनके अनुसार प्रत्येक ज्ञान पहले प्रमाण ही उत्पन्न होता है। बाद में यदि कारणों में दोषज्ञान अथवा बाधक प्रत्यय के द्वारा उसकी प्रमाणता हटा दी

जाय तो वह अप्रमाण कहलाने लगता है। अतः जब तक कारणदोषज्ञान अथवा बाधक प्रत्यय का उदय न हो तब तक सब ज्ञान प्रमाण ही हैं। इसलिए ज्ञान में प्रमाणता स्वतः ही आती है। किन्तु अप्रामाण्य में ऐसी बात नहीं है। अप्रामाण्य की उत्पत्ति तो परतः ही होती है। क्योंकि उसमें ज्ञान के कारणों के अतिरिक्त दोषरूप सामग्री की अपेक्षा होती है। वृत्तिकार ने मीमांसकों की उक्त मान्यता का सप्रमाण खण्डन करके यह सिद्ध किया है कि प्रामाण्य अभ्यास दशा में स्वतः और अनभ्यास दशा में परतः गृहीत होता है। अतः प्रामाण्य और अप्रामाण्य की उत्पत्ति के विषय में सर्वथा एकान्त पक्ष का आश्रय लेना ठीक नहीं है, किन्तु अनेकान्त पक्ष ही श्रेयान् है।

मीमांसक कहते हैं कि कोई पुरुष सर्वज्ञ या अतीन्द्रियदर्शी नहीं हो सकता है, क्योंकि किसी भी पुरुष में ज्ञान और वीतरागता का पूर्ण विकास संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने प्रत्यक्षादि पाँच प्रमाणों के द्वारा सर्वज्ञ की असिद्धि बतलाकर अभाव प्रमाण के द्वारा उसके अभाव की सिद्धि किया है। वृत्तिकार ने उक्त मान्यता का निराकरण करते हुए 'साधनत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबन्ध-संभवात्' इस सूत्र की व्याख्या में प्रबल एवं निर्दोष अनुमान प्रमाण से विस्तारपूर्वक सिद्ध किया है कि कोई पुरुष सकलपदार्थसाक्षात्कारी है, क्योंकि उसका स्वभाव उनको जानने का है तथा उसमें प्रतिबन्धक के कारण नष्ट हो गए हैं।

मीमांसक वेद को अपौरुषेय मानते हैं। क्योंकि वेद मुख्य रूप से अतीन्द्रिय धर्म का प्रतिपादक है और अतीन्द्रियदर्शी कोई पुरुष संभव नहीं है। अतः धर्म में वेद ही प्रमाण है। मीमांसकों ने वेद को दोषों से मुक्त रखने के लिए एक नये ही उपाय का आविष्कार किया है कि जब वक्ता ही न माना जाय तब दोषों की संभावना रह ही नहीं सकती। क्योंकि वक्ता के अभाव में दोष निराश्रय रह नहीं सकते। इस प्रकार वेद को स्वतः प्रमाण माना गया है। और वेद को अपौरुषेय मानने के कारण मीमांसकों को शब्दमात्र को नित्य मानना पड़ा, क्योंकि यदि शब्द को अनित्य मानते तो शब्दात्मक वेद को भी अनित्य और पौरुषेय मानना पड़ता, जो कि अभीष्ट नहीं है। इस प्रकार मीमांसकों ने गकारादि प्रत्येक शब्द को नित्य, एक और व्यापक मानकर वेद को अपौरुषेय सिद्ध किया है।

वृत्तिकार ने 'आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः' इस सूत्र की व्याख्या में मीमांसकों की उक्त मान्यता का खण्डन करते हुए विस्तार से यह सिद्ध किया

है कि शब्द अनित्य, अनेक और अव्यापक है, तथा महाभारत आदि की भांति पुरुष कर्तृक होने से वेद पौरुषेय है।

वेदान्तदर्शन

उपनिषदों के सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित होने के कारण इस दर्शन का नाम वेदान्त (वेद का अन्त—उपनिषद्) प्रसिद्ध हुआ है। ब्रह्मसूत्र (वेदान्तसूत्र) के रचयिता महर्षि बादरायण व्यास हैं। शंकर, रामानुज और मध्व ये ब्रह्मसूत्र के प्रसिद्ध भाष्यकार हैं। मीमांसकों की भांति वेदान्ती भी छह प्रमाण मानते हैं।

वेदान्तदर्शन के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र तत्त्व है। इस संसार में जो नानात्मकता दृष्टिगोचर होती है वह सब मायिक (माया–अविद्या-जनित) है। एक ही तत्त्व की सत्ता स्वीकार करने के कारण यह दर्शन अद्वैतवादी है।

वेदान्तियों ने मुख्यरूप से 'यह सब ब्रह्म है, इस जगत् में नाना कुछ भी नहीं है, सब उसी के पर्यायों को देखते हैं, उसको कोई भी नहीं देखता'; ऐसी श्रुति (वेद) के आधार से ब्रह्म की सिद्धि की है। तथा उक्त श्रुति के समर्थन में प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण की दुहाई भी दी है। किन्तु वृत्तिकार ने अनेक युक्तियों के आधार से विस्तारपूर्वक अद्वैत ब्रह्म का निराकरण करके सप्रमाण द्वैत अथवा अनेकत्व की सिद्धि की है।

जैनदर्शन का महत्त्व

भारतीयदर्शन के इतिहास में जैनदर्शन का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने अपनी-अपनी स्वाभाविक रुचि, परिस्थिति या भावना से वस्तु तत्त्व को जैसा देखा उसीको दर्शन के नाम से कहा। किन्तु किसी भी तत्त्व के विषय में कोई भी तात्त्विक दृष्टि ऐकान्तिक नहीं हो सकती। सर्वथा भेदवाद या अभेदवाद, नित्यैकान्त या क्षणिकैकान्त एकान्त-दृष्टि है। प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक है और कोई भी दृष्टि उन अनेक धर्मों का एक साथ प्रतिपादन नहीं कर सकती है। इस सिद्धान्त को जैनदर्शन ने अनेकान्तदर्शन के नाम से कहा है। जैनदर्शन का मुख्य उद्देश्य अनेकान्त सिद्धान्त के आधार पर विभिन्न मतों का समन्वय करना है। विचार जगत् का अनेकान्त सिद्धान्त ही नैतिक जगत् में अहिंसा का रूप धारण कर लेता है। अतः भारतीयदर्शन के विकास को समझने के लिए जैनदर्शन का विशेष महत्त्व है।

जैनन्याय का क्रमिक विकास

आचार्य उमास्वामी का 'तत्त्वार्थसूत्र' जैनदर्शन का प्रमुख सूत्रग्रन्थ है। उमास्वामी ने सम्यग्ज्ञान के भेदों को बतलाकर 'तत्प्रमाणे' (त० सू० १।१०) सूत्र द्वारा सम्यग्ज्ञान में प्रमाणता का उल्लेख किया है। तदनन्तर आचार्य समन्तभद्र के द्वारा जैनन्याय का वास्तविक प्रारम्भ होता है। समन्तभद्र के समय में भावैकान्त, अभावैकान्त, नित्यैकान्त, अनित्यैकान्त, भेदैकान्त, अभेदैकान्त, दैववाद, पुरुषार्थवाद आदि अनेक एकान्तों का प्राबल्य था। समन्तभद्र ने इन समस्त एकान्तों का स्याद्वाद दृष्टि से समन्वय किया है।[1] साथ ही उन्होंने प्रमाण और स्याद्वाद का लक्षण; सप्तभङ्गी, सुनय और दुर्नय की व्याख्या; अनेकान्त में भी अनेकान्त की प्रक्रिया; तथा अज्ञाननिवृत्ति, हान, उपादान और उपेक्षा को फल बतलाया है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने नय और अनेकान्त का विशद विवेचन करने के साथ ही प्रमाण के लक्षण में बाधवर्जित विशेषण देकर उसे समृद्ध किया है। तथा प्रमाण के प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन भेद किए हैं[2]। अनुमान और हेतु का लक्षण बतलाकर प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों के स्वार्थ और परार्थ भेद बतलाए हैं। जब दिग्नाग ने हेतु का लक्षण त्रिरूप सिद्ध किया तब पात्रकेसरी स्वामी ने हेतु का अन्यथानुपपत्तिरूप एक लक्षण स्थापित किया।

आचार्य जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण (ई० ७ वीं सदी) ने सर्वप्रथम लौकिक इन्द्रिय प्रत्यक्ष को जो अभी तक परोक्ष कहा जाता था, व्यवहार प्रत्यक्ष के नाम से कहा है।[3] इसके बाद अकलङ्क ने प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो भेद करके पुनः प्रत्यक्ष के मुख्यप्रत्यक्ष (अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष) और सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष (इन्द्रिय प्रत्यक्ष) ये दो भेद किए हैं। तथा परोक्ष प्रमाण के भेदों में स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस प्रकार न्यायशास्त्र की व्यवस्थित रूपरेखा अकलङ्क से प्रारम्भ होती है। वास्तव में अकलङ्क जैनन्याय के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं।

आगम में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान को परोक्ष बतलाया गया है तथा मति, स्मृति, संज्ञा (प्रत्यभिज्ञान) चिन्ता (तर्क) और अभिनिबोध (अनुमान) को

१. देखो आप्तमीमांसा।
२. देखो न्यायावतार।
३. देखो विशेषावश्यक भाष्य।

मतिज्ञान का पर्याय कहा है। किन्तु लोकव्यवहार में इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है। अतः लोकव्यवहार में सामंजस्य सिद्ध करने के लिए मतिज्ञान के एक अंश मति (इन्द्रियजन्य ज्ञान) को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष बतलाकर शेष स्मृति आदि को परोक्ष कहा गया है। क्योंकि स्मृति आदि ज्ञान अपनी उत्पत्ति में ज्ञानान्तर की अपेक्षा रखते हैं। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये ज्ञान भी ज्ञानान्तर से व्यवहित न होने के कारण सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ही हैं। अतः स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम के भेद से परोक्ष ज्ञान के पांच भेद हैं। इस प्रकार सर्वप्रथम अकलङ्क ने ही परोक्ष प्रमाण की एक सुनिश्चित सीमा निश्चित की है। अकलङ्क ने ही अनुमान, साध्य, साधन आदि के लक्षणों का स्पष्टरूप से प्रतिपादन किया है। अकलङ्क के न्यायविनिश्चय में एक श्लोक मिलता है जिसके द्वारा अविनाभाव को हेतु का एकमात्र लक्षण बतलाया गया है।[1] 'तत्त्वसंग्रहपञ्जिका' के अनुसार यह श्लोक पात्रकेसरी स्वामी का है।

अकलङ्क के बाद विद्यानन्दी ने जैनन्याय के सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया है। आचार्य माणिक्यनन्दी ने परीक्षामुख की रचना करके जैनन्याय के सिद्धान्तों को सूत्रबद्ध किया है। बौद्ध हेतु के तीन ही भेद मानते हैं—स्वभाव, कार्य और अनुपलब्धि। किन्तु माणिक्यनन्दी ने हेतु के सर्वप्रथम उपलब्धि और अनुपलब्धि के भेद से दो भेद करके पुनः दोनों के अविरुद्ध और विरुद्ध के भेद से दो-दो भेद किए हैं। इन दोनों के भी कारण, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर आदि के भेद से कई भेद किए हैं। ध्यान देने की बात यह है कि जहां बौद्धों ने अनुपलब्धि को ही प्रतिषेध साधक माना है वहां माणिक्यनन्दी ने उपलब्धि और अनुपलब्धि दोनों को ही विधि और प्रतिषेध साधक बतलाया है।

अनुपलब्धि दो प्रकार की होती है—दृश्यानुपलब्धि और अदृश्यानुपलब्धि। घट की अनुपलब्धि दृश्यानुपलब्धि है, क्योंकि घट दृश्य है। परमाणु की अनुपलब्धि अदृश्यानुपलब्धि है, क्योंकि परमाणु अदृश्य है। बौद्धों ने दृश्यानुपलब्धि को ही अभाव साधक माना है, अदृश्यानुपलब्धि को नहीं। किन्तु अकलङ्क ने बतलाया है कि अदृश्यानुपलब्धि से भी अभाव की सिद्धि होती है। क्योंकि दृश्यत्व का अर्थ प्रत्यक्षविषयत्व नहीं है, अपितु उसका अर्थ है प्रमाणविषयत्व। हम मृत प्राणी

१. अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥ —न्यायविनिश्चय श्लो० ३२३

में चैतन्य के अभाव की सिद्धि अदृश्यानुपलब्धि से ही करते हैं, क्योंकि चैतन्य अदृश्य है[1]।

माणिक्यनन्दी के बाद प्रभाचन्द्र, अनन्तवीर्य, हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने भी पूर्वाचार्यों का अनुसरण करते हुए न्याय के सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन एवं प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार जैनन्याय में उपमान का प्रत्यभिज्ञान में, अर्थापत्तिका अनुमान में, और अभाव का प्रत्यक्ष आदि में अन्तर्भाव करके प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से प्रमाण की द्वित्व संख्या का समर्थन किया गया है। साथ ही व्याप्ति को ग्रहण करने वाले 'तर्क' नामक एक ऐसे प्रमाण को प्रतिष्ठित किया गया है जिसको अन्य किसी दर्शन ने प्रमाण नहीं माना है।

प्रमाण मीमांसा

'प्रमाण शब्द की निरुक्ति के अनुसार—जिसके द्वारा पदार्थों का ज्ञान हो, उसे प्रमाण कहते हैं।[2] कुछ दार्शनिकों ने इसी निरुक्ति का आश्रय लेकर प्रमा के करण[3] अर्थात् साधकतम कारण को प्रमाण कहा है। प्रमा नाम वस्तु के यथार्थ ज्ञान का है[4], उसकी उत्पत्ति में जो विशिष्ट कारण होता है, वह करण कहलाता है।[5] प्रमाण के इस सामान्य लक्षण में विवाद न होने पर भी प्रमा के करण के विषय में विवाद है।

बौद्ध सारूप्य (तदाकारता) और योग्यता को प्रमिति का करण मानते हैं। सांख्य इन्द्रियवृत्ति को, यौग (नैयायिक-वैशेषिक) इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष और ज्ञान को, प्राभाकर ज्ञाता के व्यापार को और मीमांसक इन्द्रिय को प्रमा का करण मानते हैं। किन्तु जैन लोग ज्ञान को ही प्रमा का करण कहते हैं।

बौद्धदर्शन में अज्ञात अर्थ के प्रकाशक ज्ञान को प्रमाण माना गया है।[6]

१. अदृश्यानुपलम्भादभावासिद्धिरित्ययुक्तं परचैतन्यनिवृत्तावारेकापत्तेः।
—अष्टशती–अष्टसहस्री पृ. ५२
२. प्रमीयते येन तत्प्रमाणम्।
३. प्रमाकरणं प्रमाणम्।
४. यथार्थानुभवः प्रमा। —तर्कभाषा केशवमि०
५. साधकतमं कारणं करणम्।
६. अज्ञातार्थज्ञापकं प्रमाणम्। —प्रमाणसमुच्चय टीका पृ. ११

दिग्नाग ने विषयाकार को प्रमाण, तथा विषयाकार अर्थनिश्चय को और स्वसंवित्ति को प्रमाण का फल माना है।[1]

धर्मकीर्ति ने प्रमाण के लक्षण में 'अविसंवादि' पद को जोड़कर दिग्नाग प्रतिपादित लक्षण का ही समर्थन किया है।[2] तत्त्वसंग्रहकार शान्तरक्षित ने सारूप्य और योग्यता को प्रमाण माना है, तथा विषयाधिगति और स्वसंवित्ति को फल माना है।[3] मोक्षाकर गुप्त ने अपनी तर्कभाषा में भी अपूर्व अर्थ के विषय करनेवाले सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहा है।[4] इस प्रकार बौद्धों ने अज्ञातार्थ-प्रकाशक अविसंवादि ज्ञान को प्रमाण माना है।

बौद्धों के यहाँ प्रमाण और फल में अभेद होने से यद्यपि प्रमाण ज्ञानरूप ही है, तथापि विषयाकारता को ही उन्होंने प्रमाण माना है। यद्यपि ज्ञानगत सारूप्य ज्ञानस्वरूप ही है, फिर भी ज्ञान का विषयाकार होना एक जटिल समस्या है; क्योंकि अमूर्तिक ज्ञान का मूर्तिक पदार्थ के आकार होना सम्भव नहीं है। विषयाकारता को प्रमाण मानने से संशय और विपर्यय ज्ञान को भी प्रमाण मानना पड़ेगा; क्योंकि वे ज्ञान भी तो विषयाकार होते हैं।

सांख्यों ने श्रोत्रादि इन्द्रियों की वृत्ति (व्यापार) को प्रमाण माना है।[5] किन्तु इन्द्रिय वृत्ति को प्रमाण मानना युक्तिसङ्गत नहीं है; क्योंकि इन्द्रियों के समान उनका व्यापार भी अचेतन और अज्ञानरूप ही होगा। अतः अज्ञानरूप व्यापार प्रमा का साधकतम कारण नहीं हो सकता।

न्यायदर्शन में न्यायसूत्र के भाष्यकार वात्स्यायन ने उपलब्धि-साधन को प्रमाण माना है।[6] उद्योतकर ने भी उपलब्धि के साधन को ही प्रमाण स्वीकार

१. स्वसंवित्तिः फलं चात्र तद्रूपार्थे निश्चयः।
विषयाकार एवास्य प्रमाणं तेन मीयते॥ —प्रमाणसमुच्चय० २. १०

२. प्रमाणमविसंवादिज्ञानमज्ञातार्थप्रकाशो वा। —प्रमाणवार्तिक

३. विषयाधिगतिश्चात्र प्रमाणफलमिष्यते।
स्ववित्तिर्वा प्रमाणं तु सारूप्यं योग्यताऽपि वा॥
—तत्त्वसंग्रहकारिका १३४४

४ प्रमाणं सम्यग्ज्ञानमपूर्वगोचरम्। —तर्कभाषा मोक्षाकर गुप्त पृ० १।

५. इन्द्रियवृत्तिः प्रमाणम्। —योगदर्शन व्यासभाष्य पृ. २७

६. उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानि। —न्यायभाष्य० पृ. १८

किया है।[1] जयन्त भट्ट ने प्रमा के करण को प्रमाण कहा है।[2] उदयन ने यथार्थानुभव को प्रमाण माना है।[3] यहाँ यह ज्ञातव्य है कि उदयन के पहले न्याय-वैशेषिक दर्शन में अनुभव पद दृष्टिगोचर नहीं होता।

वैशेषिक-दर्शन में सर्वप्रथम कणाद ने प्रमाण के सामान्य लक्षण का निर्देश किया है। उन्होंने दोष-रहित ज्ञान को विद्या (प्रमाण) कहा है।[4] कणाद के बाद वैशेषिक दर्शन के अनुयायियों ने प्रमा के करण को ही प्रमाण माना है।

इस प्रकार न्याय-वैशेषिक दर्शन में प्रमा के करण को प्रमाण माना गया है। उन्होंने प्रत्यक्ष प्रमा के तीन करण माने हैं—इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष और ज्ञान।[5]

किन्तु इन्द्रिय और इन्द्रियार्थसन्निकर्ष को प्रत्यक्ष प्रमा का करण मानना उचित नहीं है; क्योंकि इन्द्रिय और सन्निकर्ष अज्ञानरूप है, अतः वे अज्ञान की निवृत्तिरूप प्रमा के करण कैसे हो सकते हैं? अज्ञान-निवृत्ति में अज्ञान का विरोधी ज्ञान ही करण हो सकता है। जैसे कि अन्धकार की निवृत्ति में उसका विरोधी प्रकाश ही करण होता है। सन्निकर्ष को प्रमाण मानने में एक दोष यह भी है कि क्वचित् सन्निकर्ष के रहने पर भी ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है और क्वचित् सन्निकर्ष के नहीं रहने पर भी ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

वृद्ध नैयायिकों ने ज्ञानात्मक तथा अज्ञानात्मक दोनों ही प्रकार की सामग्री को प्रमा का करण माना है[6]। अतः वे कारक-साकल्य अर्थात् इन्द्रिय, मन, पदार्थ, प्रकाश आदि कारणों की समग्रता को प्रमाण मानते हैं। इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि अर्थ की उपलब्धि में साधकतम कारण तो ज्ञान ही है और कारक-साकल्य की सार्थकता उस ज्ञान को उत्पन्न करने में है,

१. उपलब्धिहेतुः प्रमाणम्। न्यायवार्तिक, पृ. ५

२. प्रमाकरणं प्रमाणम्। —न्यायमञ्जरी पृ. २५

३. यथार्थानुभवो मानमनपेक्षतयेष्यते। —न्यायकुसुमा० ४, १

४. अदुष्टं विद्या। —वैशेषिक सूत्र ९, २, १२

५. तस्याः करणं त्रिविधम्। कदाचिदिन्द्रियम्, कदाचिदिन्द्रियार्थसन्निकर्षः, कदाचिज्ज्ञानम्। —तर्कभाषा पृ. १३

६ अव्यभिचारिणीमसन्दिग्धामर्थोपलब्धिं विदधती बोधाबोधस्वभावा सामग्री प्रमाणम्। —न्यायमञ्जरी पृ. १२

क्योंकि ज्ञान को उत्पन्न किये बिना कारक-साकल्य अर्थ को उपलब्धि नहीं करा सकता है। इसलिए प्रमा का करण ज्ञान ही हो सकता है; अज्ञानरूप सन्निकर्षादि नहीं। यतः प्रमाण हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करने में समर्थ होता है, अतः वह प्रमाण ज्ञान ही हो सकता है।

मीमांसादर्शन में प्राभाकर और भाट्ट दो सम्प्रदाय हैं। उनमें से प्राभाकरों ने अनुभूति को प्रमाण का लक्षण माना है[1] और ज्ञातृ-व्यापार को भी[2]। किन्तु एक ही अर्थ की अनुभूति विभिन्न व्यक्तियों को अपनी-अपनी भावना के अनुसार विभिन्न प्रकार की होती है, इसलिए केवल अनुभूति को प्रमाण नहीं माना जा सकता। ज्ञातृ-व्यापार को प्रमाण मानने में उनकी युक्ति यह है कि अर्थ का प्रकाशन ज्ञाता के व्यापार द्वारा होता है, अतः ज्ञाता का व्यापार प्रमाण है। किन्तु ज्ञातृ-व्यापार को प्रमाण मानना ठीक नहीं है, क्योंकि ज्ञाता के व्यापार को अर्थ-प्रकाशन में या उसके जानने में प्रमाण तभी माना जा सकता है, जब कि उसका व्यापार यथार्थ वस्तु-बोध में कारण हो। जहाँ पर यह यथार्थ वस्तु-बोध में कारण नहीं है, प्रत्युत विपरीत ही अर्थ-बोध करा रहा है, वहाँ उसे कैसे प्रमाण माना जा सकता है।

भाट्टों ने अनधिगत (अज्ञात) यथावस्थित अर्थ के जाननेवाले ज्ञान को प्रमाण कहा है[3]। किन्तु यह लक्षण अव्याप्ति दोष से दूषित है, कारण कि उन्होंने स्वयं गृहीतग्राही धारावाहिक ज्ञान को प्रमाण माना है। मीमांसकों ने प्रमाण का एक और भी विस्तृत, विशद एवं व्यापक लक्षण कहा है—

जो अपूर्व अर्थ को जाननेवाला हो, निश्चित हो, बाधाओं से रहित हो, निर्दोष कारणों से उत्पन्न हुआ हो और लोक-सम्मत हो, वह प्रमाण कहलाता है[4]।

१. अनुभूतिश्च नः प्रमाणम्। —बृहती १, १, ५

२. तेन जन्मैव विषये बुद्धेर्व्यापार इष्यते।
तदेव च प्रमारूपं तद्वती करणं च धीः॥
व्यापारो न यदा तेषां तदा नोत्पद्यते फलम्।
—मीमांसा श्लो० पृ. १५२

३ अनधिगततथाभूतार्थनिश्चायकं प्रमाणम्। —शास्त्रदी० पृ. १२३

४. तत्रापूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम्।
अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसम्मतम्॥
—उद्धृत प्रमाणवार्तिकालंकार पृ० २१

उक्त प्रमाणलक्षण में यद्यपि आपत्ति-जनक कोई बात प्रतीत नहीं होती है, फिर भी अन्य दार्शनिकों ने इस लक्षण की आलोचना की है। मेरे विचार से प्रमाण का उक्त लक्षण उचित प्रतीत होता है। किन्तु मीमांसकों ने ज्ञान को जो परोक्ष माना है, वही सबसे बड़ी आपत्ति की बात है। उनकी मान्यता है कि ज्ञान का प्रत्यक्ष नहीं होता है, किन्तु ज्ञातता की अन्यथानुपपत्ति से जनित अर्थापत्ति से ज्ञान गृहीत होता है[1]। उनकी यह मान्यता युक्ति-सङ्गत नहीं है, क्योंकि जो स्वयं परोक्ष है, वह प्रमाण कैसे हो सकता है? अतः मीमांसक का प्रमाणरूप ज्ञान को परोक्ष मानना प्रतीति-विरुद्ध है।

जैनदर्शन में सर्वप्रथम आचार्य समन्तभद्र ने स्वपरावभासक ज्ञान को प्रमाण बतलाया है[2]। आचार्य सिद्धसेन ने स्वपरावभासक तथा बाधवर्जित ज्ञान को प्रमाण माना है[3]। इसके अनन्तर अकलङ्क ने प्रमाण के लक्षण में व्यवसायात्मक पद जोड़कर अपने और अर्थ को ग्रहण करनेवाले व्यवसायात्मक ज्ञान को प्रमाण कहा है[4]। पुनः अकलङ्क ने ही प्रमाण के लक्षण में अविसंवादी और अनधिगत विशेषणों को जोड़ा है[5]।

विद्यानन्दी ने पहले सम्यग्ज्ञान को ही प्रमाण का लक्षण बतलाकर पुनः उसे स्वार्थव्यवसायात्मक सिद्ध किया है[6]। इन्होंने प्रमाण के लक्षण में अनधिगत या अपूर्व विशेषण नहीं दिया है। क्योंकि उनके अनुसार ज्ञान चाहे अपूर्व अर्थ को जाने या गृहीत अर्थ को, वह स्वार्थव्यवसायात्मक होने से ही प्रमाण

१. ज्ञातताऽन्यथानुपपत्तिप्रसूतयाऽर्थापत्त्या ज्ञानं गृह्यते।
—तर्कभाषा केशवमिश्र, पृ. ४२

२. स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम्।
—स्वयम्भू० श्लो० ६३

३. प्रमाणं स्वपराभासि ज्ञानं बाधविवर्जितम्।
—न्यायावतार श्लो० १

४. व्यवसायात्मकं ज्ञानमात्मार्थग्राहकं मतम्। —लघीयस्त्रय का० ६०

५. प्रमाणमविसंवादिज्ञानमनधिगतार्थाधिगमलक्षणत्वात्।
—अष्टशती का० ३६

६. सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्। —प्रमाणपरीक्षा पृ. ५१
स्वार्थव्यवसायात्मकं सम्यग्ज्ञानं सम्यग्ज्ञानत्वात्।
—प्रमाणपरीक्षा

है¹। किन्तु माणिक्यनन्दी ने स्व और अपूर्व अर्थ के व्यवसायात्मक ज्ञान को प्रमाण का लक्षण सिद्ध किया है²।

परीक्षामुख

यह जैनन्याय का आद्य सूत्रग्रन्थ है। आचार्य उमास्वामी (वि० सं० की पहली श०) का 'तत्त्वार्थसूत्र' जैन दर्शन का आद्य सूत्रग्रन्थ है। सांख्यसूत्र, योगसूत्र, न्यायसूत्र, वैशेषिकसूत्र, मीमांसासूत्र, ब्रह्मसूत्र आदि इतर दर्शनों के सूत्रग्रन्थों की रचना भी विक्रम पूर्व में हो चुकी थी। फिर भी न्यायप्रवेश, न्यायमुख आदि की तरह जैनन्याय को सूत्रबद्ध करने वाला ग्रन्थ विक्रम की दशवीं शताब्दी तक नहीं बन पाया था। अतः माणिक्यनन्दी ने इस ग्रन्थ को लिख कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति ही नहीं की किन्तु आगे के सूत्रग्रन्थों के लिए एक आदर्श भी उपस्थित किया है। बौद्धदर्शन में हेतुमुख, न्यायमुख जैसे ग्रन्थ पाये जाते थे। माणिक्यनन्दी ने भी अपने सूत्रग्रन्थ का नाम मुखान्त रखकर पूर्ववर्ती ग्रन्थों के नामों का अनुकरण किया है।

परीक्षामुख में प्रमाण और प्रमाणाभास की परीक्षा की गई है। किसी विषय में विरुद्ध नाना युक्तियों की प्रबलता और दुर्बलता का निश्चय करने के लिए जो विचार किया जाता है वह परीक्षा कहलाता है³। जिस प्रकार हम दर्पण में अपने मुख को स्पष्ट देखते हैं उसी प्रकार परीक्षामुखरूपी दर्पण में प्रमाण और प्रमाणाभास को स्पष्टरूप से देखा जा सकता है। यह छह समुद्देशों में विभक्त है तथा इसकी सूत्रसंख्या २०८ (?) है।

परीक्षामुख का उद्गम अकलङ्क के लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह आदि ग्रन्थों के आधार से हुआ है। इस विषय में वृत्तिकार आचार्य अनन्तवीर्य ने लिखा है—

१. तत्त्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं मानमितीयता।
लक्षणेन गतार्थत्वाद् व्यर्थमन्यद्विशेषणम्॥ —तत्त्वार्थ श्लो०
गृहीतमगृहीतं वा यदि स्वार्थं व्यवस्यति।
तन्न लोके न शास्त्रेषु विजहाति प्रमाणताम्॥ तत्त्वार्थ श्लो० १।१०।७८

२. स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्। —परीक्षामु० १।१

३. विरुद्धनानायुक्तिप्राबल्यदौर्बल्यावधारणाय प्रवर्तमानो विचारः परीक्षा। —न्यायदीपिका
लक्षितस्य लक्षणमुपपद्यते न वेति विचारः परीक्षा। —तर्कसंग्रह पदकृ०

"जिस बुद्धिमान् ने अकलङ्क के वचनरूपी सागर का मन्थन करके न्यायविद्यारूपी अमृत को निकाला उस माणिक्यनन्दी को नमस्कार हो।"¹

परीक्षामुख पर अकलङ्क के ग्रंथों का प्रभाव तो है ही, साथ ही दिग्नाग के न्यायप्रवेश और धर्मकीर्ति के न्यायबिन्दु का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उत्तरकालवर्ती आचार्यों में वादिदेव सूरि के प्रमाणनयतत्त्वालोक और हेमचन्द्र की प्रमाणमीमांसा पर परीक्षामुख अपना अमिट प्रभाव रखता है।

भाषा और शैली

इस ग्रंथ की शैली न्यायसूत्र, वैशेषिकसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र आदि की तरह सूत्रात्मक है। सूत्र वह है जो अल्प अक्षरों वाला, असन्दिग्ध, सारवान्, गूढ निर्णय वाला, निर्दोष, युक्तिमान् और तथ्य स्वरूप वाला हो²। सूत्र का यह लक्षण परीक्षामुख में पूर्ण रूप से पाया जाता है। इसकी भाषा प्राञ्जल एवं सुबोध है। इसके सूत्र सरल, सरस तथा गंभीर अर्थ वाले हैं। सरल संस्कृत में प्रत्येक बात को संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूप से समझाया गया है। यद्यपि न्याय-ग्रंथों की भाषा दुर्बोध, जटिल एवं गंभीर होती है, किन्तु माणिक्यनन्दी ने सरल, सरस एवं प्राञ्जल भाषा को अपनाया है क्योंकि उनका उद्देश्य न्यायशास्त्र में मन्द बुद्धि वाले बालकों के लिए न्यायशास्त्र का ज्ञान कराना था।

प्रतिपाद्य विषय

परीक्षामुख का मुख्य विषय प्रमाण और प्रमाणाभास का प्रतिपादन करना है।

प्रथम समुद्देश—इसमें प्रमाण का स्वरूप, प्रमाण के विशेषणों की सार्थकता, दीपक के दृष्टान्त से ज्ञान में स्व और पर की व्यवसायात्मकता की सिद्धि तथा प्रमाण की प्रमाणता को कथंचित् स्वतः और कथंचित् परतः सिद्ध किया गया है।

द्वितीय समुद्देश—इसमें प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष दो भेद, प्रत्यक्ष का लक्षण, सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का वर्णन, अर्थ और आलोक में ज्ञान के प्रति

१. अकलङ्कवचोऽम्भोधेरुद्दध्रे येन धीमता।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने॥ —प्रमेयरत्नमाला पृ० ४

२. अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् गूढनिर्णयम्।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥ —प्रमेयरत्नमाला टि० पृ० ५

कारणता का निरास, ज्ञान में तदुत्पत्ति (पदार्थ से उत्पत्ति) का खण्डन, स्वावरणक्षयोपशमरूप योग्यता से ज्ञान के द्वारा प्रतिनियत विषय की व्यवस्था, ज्ञान के कारण को ज्ञान का विषय मानने में व्यभिचार का प्रतिपादन और निरावरण एवं अतीन्द्रियस्वरूप मुख्य प्रत्यक्ष का लक्षण बतलाया गया है।

तृतीय समुद्देश—इसमें परोक्ष का लक्षण, परोक्ष के पाँच भेद, उदाहरणपूर्वक स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान का लक्षण, हेतु और अविनाभाव का स्वरूप, साध्य का लक्षण, साध्य के विशेषणों की सार्थकता, धर्मी (पक्ष) का प्रतिपादन, धर्मी की सिद्धि के प्रकार, पक्षप्रयोग की आवश्यकता, अनुमान के दो अङ्गों का प्रतिपादन, उदाहरण, उपनय और निगमन को अनुमान के अङ्ग मानने में दोषोद्भावन, शास्त्र में उदाहरणादि के भी अनुमान के अवयव होने की स्वीकृति, अनुमान के दो भेद, उनका लक्षण, सोदाहरण हेतु के २२ भेदों का विशद वर्णन, बौद्धों के प्रति कारणहेतु की सिद्धि, आगमप्रमाण का लक्षण और शब्द में वस्तु प्रतिपादन की शक्ति का वर्णन है।

चतुर्थ समुद्देश—इसमें प्रमाण के सामान्य-विशेष उभयरूप विषय की सिद्धि करते हुए सामान्य और विशेष के दो दो भेदों का उदाहरणसहित प्रतिपादन किया गया है।

पञ्चम समुद्देश—इसमें प्रमाण के फल को बतलाकर प्रमाण से फल में कथंचित् अभिन्नता और कथंचित् भिन्नता सिद्ध की गई है।

षष्ठ समुद्देश—इसमें प्रमाणाभासों का विशद वर्णन है। स्वरूपाभास, प्रत्यक्षाभास, परोक्षाभास, स्मरणाभास, प्रत्यभिज्ञानाभास, तर्काभास, अनुमानाभास, पक्षाभास, हेत्वाभास, हेत्वाभास के असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चित्कर भेदों का उदाहरणसहित वर्णन, दृष्टान्ताभास, दृष्टान्ताभास के भेद, बालप्रयोगाभास, आगमाभास, संख्याभास, विषयाभास, फलाभास तथा वादी और प्रतिवादी की जयपराजय की कसौटी का प्रतिपादन किया गया है।

परीक्षामुख की टीकाएँ

१ प्रमेयकमलमार्तण्ड

आचार्य प्रभाचन्द्र ने परीक्षामुख पर १२ हजार श्लोकप्रमाण प्रमेयकमलमार्तण्ड नाम की बृहद् टीका लिखी है। यह जैनन्यायशास्त्र का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका नाम ही इस बात को ख्यापित करता है कि यह

ग्रन्थ प्रमेयरूपी कमलों के लिए मार्तण्ड (सूर्य) के समान है। इसे लघु अनन्तवीर्य ने उदार चन्द्रिका (चाँदनी) की उपमा दी है और अपनी रचना प्रमेयरत्नमाला को प्रमेयकमलमार्तण्ड के सामने खद्योत (जुगुनू) के समान बतलाया है¹। इससे ज्ञात होता है कि प्रमेयकमलमार्तण्ड कितना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अकेले प्रमेयकमलमार्तण्ड के अध्ययन से समस्त भारतीय दर्शनों का विशद ज्ञान हो सकता है।

२ प्रमेयरत्नमाला

लघु अनन्तवीर्य ने परीक्षामुख पर प्रसन्नरचना-शैली में प्रमेयरत्नमाला नाम की लघु टीका लिखी है। अनन्तवीर्य के सामने यद्यपि प्रभाचन्द्र की विशाल रचना (प्रमेयकमलमार्तण्ड) विद्यमान थी, फिर भी इस न्याय के अथाह सागर में से, नदी में से एक घट में भरे हुए जल की तरह, उन्हीं के वचनों को संक्षेप में अपूर्व रचना से अलंकृत करके इस ढङ्ग से रखा है कि वे न्याय-जिज्ञासुओं के चित्त को आकर्षित करते रहे हैं। संभवतः इसका नाम पहले लघुवृत्ति रहा है, बाद में इसके महत्त्व के कारण इसका नाम प्रमेयरत्नमाला हो गया हो। वास्तव में यह प्रमेयरूपी रत्नों की माला ही है। स्वयं अनन्तवीर्य ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपनी लिखी जानेवाली टीका को 'परीक्षामुख-पञ्जिका' के नाम से निर्देश किया है² और प्रत्येक समुद्देश के अन्त में जो ऐसे पुष्पिका-वाक्य मिलते हैं जिनके अनन्तवीर्य-लिखित होने की ही अधिक सम्भावना है उनमें उन्होंने अपनी टीका को परीक्षामुख लघुवृत्ति कहा है³।

इसमें समस्त दर्शनों के विशिष्ट प्रमेयों का सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया गया है। यद्यपि परीक्षामुख की तरह प्रमेयरत्नमाला का विषय भी प्रमाण और प्रमाणाभास का प्रतिपादन ही है, किन्तु प्रमेयों के प्रतिपादन के बिना प्रमाण की चर्चा अधूरी ही रह जाती है। अतः प्रमाण के विभिन्न अङ्गों की चर्चा के समय प्रकरणप्राप्त विभिन्न प्रमेयों का वर्णन उचित ही है। प्रमेयकमलमार्तण्ड में जिन विषयों का विस्तार से वर्णन है उन्हीं का संक्षेप में स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करना प्रमेयरत्नमाला की विशेषता है।

१. प्रभेन्दुवचनोदारचन्द्रिकाप्रसरे सति।
मादृशाः क्व नु गण्यन्ते ज्योतिरिङ्गणसन्निभाः॥ —प्रमेयरत्नमाला

२. देखो प्रस्तुत संस्करण का पृ० ५

३. देखो प्रमेयरत्नमाला के प्रत्येक समुद्देश की अन्तिम पुष्पिकाएँ।

३ प्रमेयरत्नालङ्कार

यह टीका भट्टारक चारुकीर्ति द्वारा परीक्षामुख के सूत्रों पर लिखी गई[१] है। परीक्षामुख के समान इसके भी छह परिच्छेद हैं। यह आकार में प्रमेयरत्नमाला से भी बड़ी है और इसमें कुछ ऐसे विषयों का भी प्रतिपादन किया गया है जो प्रमेयरत्नमाला में उपलब्ध नहीं हैं। यह रचना प्रमेयकमलमार्तण्ड और प्रमेयरत्नमाला के मध्य का एक ऐसा सोपान है जिसके द्वारा न्यायशास्त्र के भवन पर आसानी से चढ़ा जा सकता है। इसकी हस्तलिखित प्रति जैन-सिद्धान्तभवन आरा में उपलब्ध है।

४ प्रमेयकण्ठिका

इसकी हस्तलिखित प्रति भी उक्त भवन में ही पाई जाती है। इसे परीक्षामुख की टीका तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह परीक्षामुख के प्रथम सूत्र 'स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्' पर श्री शान्तिवर्णी द्वारा लिखी गई एक स्वतंत्र कृति है[२]। यह ग्रन्थ पाँच स्तवकों में विभक्त है और इसमें प्रमेयरत्नमालान्तर्गत कुछ विशिष्ट विषयों का प्रतिपादन किया गया है। यह अप्रकाशित है।

प्रमेयरत्नमाला का प्रतिपाद्य विषय——

प्रथम समुद्देश—सम्बन्ध, अभिधेय तथा प्रयोजन का प्रतिपादन, इष्टदेव को नमस्कार की सिद्धि, प्रमाण के लक्षण में प्रदत्त प्रत्येक विशेषण की सार्थकता बतलाकर 'प्रमाण में प्रामाण्य स्वतः और अप्रामाण्य परतः होता है' मीमांसकों की ऐसी मान्यता का निराकरण करके अभ्यासदशा में स्वतः और अनभ्यासदशा में परतः प्रामाण्य सिद्ध किया गया है।

द्वितीय समुद्देश—चार्वाकाभिमत प्रत्यक्षैकप्रमाणता का निरास करके अनुमान में प्रामाण्य बतलाते हुए, 'प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण हैं' बौद्धों की ऐसी मान्यता का निराकरणपूर्वक स्मृति, प्रत्यभिज्ञान

१. श्रीचारुकीर्तिधुर्यस्सन्तनुते पण्डितार्यमुनिवर्यः।
व्याख्यां प्रमेयरत्नालङ्काराख्यां मुनीन्द्रसूत्राणाम् ॥

२. परीक्षामुखसूत्रस्याद्यस्यार्थं विवृण्महे।
इति श्रीशान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां ....स्तवकः।

और तर्क की प्रामाणिकता का विस्तार से विवेचन किया गया है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के वर्णन में मतिज्ञान के ३३६ भेदों का प्रतिपादन किया गया है। 'कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता है' इस विषय में मीमांसकों के पूर्वपक्ष का विवेचन करते हुए युक्ति और प्रमाणपूर्वक सर्वज्ञ की सिद्धि की गई है। 'ईश्वर सृष्टिकर्ता है' नैयायिक-वैशेषिक के इस सिद्धान्त का पूर्वपक्ष बतलाकर उनके द्वारा प्रयुक्त कार्यत्व हेतु में अनेक विकल्पों का उद्भावन और उनमें दोषोद्भावन करके सप्रमाण सृष्टिकर्तृत्व का निराकरण किया गया है। और अन्त में 'एकमात्र ब्रह्म ही तत्त्व है' इस विषय में मीमांसकों के पूर्वपक्ष का प्रदर्शनपूर्वक उनकी उक्त मान्यता का सप्रमाण निरास किया गया है।

तृतीय समुद्देश—परोक्ष प्रमाण के स्मृति आदि भेदों का स्वरूप बतलाते हुए, नैयायिकादि के द्वारा माने गए उपमान का प्रत्यभिज्ञान में अन्तर्भाव करके हेतु लक्षण के प्रकरण में बौद्धाभिमत त्रैरूप्य और नैयायिकाभिमत पाञ्चरूप्य का निराकरण किया गया है। आगम प्रमाण के लक्षण के प्रकरण में 'प्रत्येक गकारादि वर्ण नित्य, एक और व्यापक हैं तथा वेद अपौरुषेय हैं' मीमांसकों की इस मान्यता के सम्बन्ध में पूर्वपक्ष का विवेचन करते हुए उत्तरपक्ष में सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि गकारादिवर्ण अनित्य, अनेक और अव्यापक हैं तथा आगम या वेद पौरुषेय है। और अन्त में बौद्धाभिमत अन्यापोह का निराकरण करते हुए शब्द में अर्थ की वाचकता को सिद्ध किया गया है।

चतुर्थ समुद्देश—सांख्यों ने प्रधान को सामान्यरूप मानकर उससे सृष्टि का क्रम माना है। वृत्तिकार ने सांख्यों की इस मान्यता का निराकरण करके सिद्ध किया है कि प्रधान से सृष्टि की उत्पत्ति संभव नहीं है। बौद्धों का सिद्धान्त है कि विशेष (स्वलक्षण) ही तत्त्व है। ये विशेष परस्पर-असम्बद्ध, क्षणिक एवं निरन्वय हैं। बौद्धों की इस मान्यता का निराकरण करते हुए अवयवी की सिद्धि तथा क्षणिकत्व के निराकरणपूर्वक निरन्वय विनाश का खण्डन किया गया है। वैशेषिकों ने माना है कि सामान्य और विशेष दोनों की स्वतन्त्र सत्ता है। इस मान्यता का निराकरण करके जीवादि पदार्थों को सामान्य विशेषात्मक सिद्ध किया गया है। वस्तु को सामान्य-विशेषात्मक मानने में नैयायिक-वैशेषिक द्वारा दिए गए विरोध, वैयधिकरण्य, अनवस्था, सङ्कर, व्यतिकर, संशय, अप्रतिपत्ति और अभाव इन आठ दोषों का निराकरण

किया गया है। तथा समवाय नामक पृथक् पदार्थ का खण्डन किया गया है। पर्याय नामक विशेष के निरूपण में 'आत्मा व्यापक है अथवा अणु परिमाण है' इन दोनों मान्यताओं का निराकरण करके आत्मा को स्वदेह परिमाण सिद्ध किया गया है। और अन्त में 'पृथिवी आदि चार भूतों से चैतन्य की उत्पत्ति होती है' चार्वाक की इस मान्यता का निराकरण करके आत्मा को अनादि सिद्ध किया गया है।

षष्ठ समुद्देश—सूत्रोक्त प्रमाणाभासों का यथास्थान आवश्यक विवेचन करते हुए अन्त में संक्षेप से सात नयों का स्वरूप बतलाकर वादलक्षण और पत्रलक्षण के स्वरूप की भी चर्चा की गई है।

सूत्रकार माणिक्यनन्दी

व्यक्तित्व और कार्य

आचार्य माणिक्यनन्दी जैनन्याय के आद्य सूत्रकार हैं। ये नंदिसंघ के प्रमुख आचार्य थे। धारा नगरी इनका निवासस्थल रही है ऐसा टिप्पणकार ने अपनी उत्थानिका में स्पष्ट उल्लेख किया है। माणिक्यनंदी ने अकलङ्क के ग्रंथरूपी समुद्र का मंथन तो किया ही था और इसी का फल न्यायविद्यारूपी अमृत (परीक्षामुख) है। साथ ही परीक्षामुखसूत्रों में लोकायतिक (चार्वाक), बौद्ध, सांख्य, यौग (न्याय-वैशेषिक), प्राभाकर, जैमिनीय, और मीमांसकों के नामोल्लेखपूर्वक उनके सिद्धान्तों के प्रतिपादन से इतर दर्शनों के विशिष्ट ज्ञान का भी पता चलता है।

शिमोगा जिले के नगर ताल्लुके के शिलालेख नं० ६४ के एक श्लोक में माणिक्यनन्दी को जिनराज लिखा है[१]।

न्यायदीपिका में इनका भगवान् के रूप में उल्लेख किया गया है[२]। प्रभाचन्द्र ने इनको गुरु के रूप में स्मरण किया है तथा इनके पदपङ्कज के प्रसाद से ही प्रमेयकमलमार्तण्ड की रचना करने का संकेत दिया है। इससे उनके असाधारण व्यक्तित्व का आभास मिलता है। वास्तव में माणिक्य-

१. माणिक्यनन्दीजिनराजवाणीप्राणाधिनाथः परवादिमर्दी।
चित्रं प्रभाचन्द्र इह क्षमायां मार्तण्डवृद्धौ नितरां व्यदीपि ॥

२. तथा चाह भगवान् माणिक्यनन्दिभट्टारकः। —न्यायदीपिका

नन्दी जैनन्याय के भण्डार में अपने परीक्षामुखरूपी माणिक्य को जमा करके सदा के लिए अमर हो गए हैं।

इनकी एकमात्र कृति परीक्षामुख है। किन्तु यह एक असाधारण और अपूर्व कृति है। माणिक्यनन्दी की यह एक मात्र रचना न्याय के सूत्रग्रन्थों में अपना असाधारण स्थान एवं महत्त्व रखती है। यह अकलङ्क के वचनरूपी समुद्र से निकला हुआ न्यायविद्यामृत है।

समय

प्रमेयरत्नमालाकार के उल्लेखानुसार माणिक्यनन्दी अकलङ्क के उत्तरवर्ती हैं। अकलङ्क का समय ७२० से ७८० ई० सिद्ध किया गया है तथा प्रज्ञाकरगुप्त (७२५ ई०), प्रभाकर (८ वीं श०) आदि के सिद्धान्तों का खण्डन परीक्षामुख में है। अतः माणिक्यनन्दी की पूर्वावधि ८०० ई० निर्बाध सिद्ध होती है। आचार्य प्रभाचन्द्र ने परीक्षामुख पर प्रमेयकमलमार्तण्ड नामक टीका लिखी है। प्रभाचन्द्र का समय ईसा की दशवीं शताब्दी का अन्तिम चरण है। अतः माणिक्यनन्दी की उत्तरावधि ईसा की दशवीं शताब्दी सिद्ध होती है।

आ० माणिक्यनन्दी के समय-निर्धारण में सहायक उक्त सर्व अनुमानों के पश्चात् उनके समय का जो सब से अधिक निश्चित आधार मिला है, उसके अनुसार उनका समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण सिद्ध होता है।

आ० नयनन्दी ने अपने सुदंसणचरिउ को वि० सं० ११०० में धारा-नरेश भोजदेव के समय में पूर्ण किया है। उन्होंने अपने को आ० माणिक्यनन्दी का जगद्विख्यात प्रथम शिष्य बतलाया है। आ० नयनन्दी की उक्त प्रशस्ति का वह अंश इस प्रकार है—

जिणिंदागमब्भासणे एयचित्तो तवायारणिट्ठाइ लद्धाइजुत्तो।
णरिंदामरिंदाहिवाणंदवंदी हुओ तस्स सीसो गणी रामणंदी ॥
असेसाण गंथाण पारंमि पत्तो तवे अंगवी भव्वराईवमित्तो।
गुणावासभूओ सुतेलोक्कणंदी महापंडिओ तस्स माणिक्कणंदी ॥
पढम सीसु तहो जायउ जगविक्खायउ मुणि णयणंदी अणिंदियउ।
चरिउ सुदंसणणाहहो तेण अवाहहो विरइउ बुह अहिणंदियउ ॥

× × ×

दिव विक्कमकालहो ववगएसु एयारह संवच्छरसएसु ।
तहि केवलिचरिउं अमरच्छरेण णयणंदी विरयउ वित्थरेण ॥

उक्त प्रशस्ति का भाव यह है कि आ० कुन्द-कुन्द की सन्तान में जिनेन्द्र-आगम के विशिष्ट अभ्यासी, तपस्वी गणी रामनन्दी हुए। उनके शिष्य महा-पण्डित माणिक्यनन्दी हुए—जो कि सर्व ग्रन्थों के पारगामी थे। उनके प्रथम शिष्य नयनन्दी ने वि० सं० ११०० में सुदर्शनचरित को रचा।

आ० माणिक्यनन्दी के प्रथम शिष्य ने जब अपनी रचना वि० सं० ११०० में पूर्ण की, तब उनसे उनके गुरु को कम से कम २५ वर्ष वय में अधिक होना ही चाहिए। इस प्रकार उनका समय निर्बाधरूप से विक्रम की ११वीं शती का अन्तिम चरण सिद्ध होता है। प्रमेयकमलमार्तण्डकार आ० प्रभाचन्द्र ने अपने को जो 'माणिक्यनन्दी के पद में रत'[1] कहा है, वह उनके साक्षात् शिष्यत्व को प्रकट करता है। साथ ही उससे यह भी ज्ञात होता है कि आ० प्रभाचन्द्र अपनी प्रमुख रचनाएँ अपने गुरु श्रीमाणिक्यनन्दी के सामने ही कर चुके थे।

परीक्षामुख के सूत्रों की तुलना

सूत्रकार आ० माणिक्यनन्दी के सम्मुख जो विशाल दार्शनिक सूत्र-साहित्य उपलब्ध था, उसे देखते हुए उनके हृदय में भी जैनन्याय पर इसी प्रकार के एक सूत्र-ग्रन्थ की रचना का भाव उदित हुआ और उन्होंने आ० अकलङ्क-देव के दार्शनिक प्रकरणों का मन्थन कर अपने सूत्रग्रन्थ परीक्षामुख की रचना की। यद्यपि उसकी रचना का प्रधान आधार समन्तभद्र, सिद्धसेन और अकलङ्क के ही ग्रन्थ हैं, तथापि सूत्र-रचना में—खास कर हेतु के भेद-प्रभेदों के बतलाने में—उन्होंने अपने पूर्व-वर्ती बौद्ध ग्रन्थ न्याय-बिन्दु का भी

---

१. गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः ।
नन्दिताद्दुरितैकान्तरजा जैनमतार्णवः ॥ ३ ॥
श्रीपद्मनन्दिसैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।
प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद् रत्ननन्दिपदे रतः ॥ ४ ॥

—प्रमेयकमलमार्तण्डप्रशस्ति

भर-पूर उपयोग किया है। यह बात नीचे की गई तुलना से पाठक स्वयं अनुभव करेंगे।

न्यायबिन्दु	परीक्षामुख
१ नात्र शीतस्पर्शो धूमात् (द्वि. प.)	नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ३।७३
२ नात्र शीतस्पर्शोऽग्नेः (द्वि. प.)	नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ३।७२
३ नात्र शिंशपा वृक्षाभावात् (द्वि. प.)	नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ३।८०
४ नात्र धूमोऽग्न्यभावात् (द्वि. प.)	नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ३।८२
५ नेहाप्रतिबद्धसामर्थ्यानि धूमकारणानि सन्ति धूमाभावात् । (द्वि. प.)	नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धेः । ३।८१
६ स्वरूपेणैव स्वयमिष्टोऽनिराकृतः पक्ष इति (तृ. प.)	इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ३।२०
७ यथा बाष्पादिभावेन संदिह्यमानो भूतसंघातोऽग्निसिद्धावुपदिश्यमानः संदिग्धासिद्धः (तृ. प.)	तस्य बाष्पादिभावेन भूतसंघाते संदेहात् ६।२६
८ यथाऽसर्वज्ञः कश्चिद् विवक्षितः पुरुषो रागादिमान्वेति साध्ये वक्तृत्वादिको धर्मः संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिकः (तृ. प.)	शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वादिति ६।३३
९ नित्यः शब्दोऽमूर्तत्वात् कर्मवत् परमाणुवद् घटवदिति (तृ. प.)	अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत् ६।४१
१० वैधर्म्येणापि परमाणुवद् कर्मवदाकाशवदिति साध्याद्यव्यतिरेकिणः (तृ. प.)	व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत् ६।४४

इसी प्रकार आ० माणिक्यनन्दी से पीछे होने वाले श्वेताम्बर आचार्य देवसूरि ने अपने प्रमाणनयतत्त्वालोक की रचना परीक्षामुख को सामने रख कर की है। उन्होंने अपने ग्रन्थ के अधिकांश सूत्रों का अनुवाद पर्यायवाची शब्दों के द्वारा ही किया है। और परीक्षामुख के अन्तिम सूत्र से जिस नय, वाद आदि के जानने की सूचना आ० माणिक्यनन्दी ने की थी, उसके लिए दो स्वतन्त्र परिच्छेद बनाकर अपने ग्रन्थ का विस्तार किया है।

आ० हेमचन्द्र तो देवसूरि के भी पीछे हुए हैं। उन्होंने प्रमाणमीमांसा के सूत्रों की रचना भी परीक्षामुख के सूत्रों को लक्ष्य में रख कर की है। यद्यपि आज वह पूरी उपलब्ध नहीं है फिर भी जितना अंश प्राप्त है उससे मिलान करने पर परीक्षामुख के अनुकरण की बात हृदय पर अङ्कित होती ही है। यहाँ पर परीक्षामुख के सूत्रों के साथ उक्त दोनों ग्रन्थों के कुछ सूत्रों की तुलना की जा रही है। पूरे ग्रन्थ के सूत्रों की तुलना के लिए पाठक परिशिष्ट देखें।

परीक्षामुखसूत्राणि	विभिन्नग्रन्थसूत्राणि
१ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् (१।१)	स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम् (प्र. न. त. १।२)
	सम्यगर्थनिर्णयः प्रमाणम् (प्रमा. मी. १।१।२)
२ तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च (१।१३)	तदुभयमुत्पत्तौ परत एव, ज्ञप्तौ तु स्वतः परतश्च (प्र. न. त. १।१९)
	प्रामाण्यनिश्चयः स्वतः परतो वा (प्रमा. मी. १।१।८)
३ विशदं प्रत्यक्षम् । (२।३)	स्पष्टं प्रत्यक्षम् (प्र. न. त. २।३)
	विशदः प्रत्यक्षम् (प्रमा. मी. १।१।१३)
४ सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् (२।११)	सकलं तु सामग्रीविशेषतः समुद्भूतं समस्तावरणक्षयापेक्षं निखिलद्रव्यपर्यायसाक्षात्कारिस्वरूपं केवलज्ञानम् । (प्र. न. त. २।२३)
	तत्सर्वथावरणविलये चेतनस्य स्वरूपाविर्भावो मुख्यं केवलम् (प्रमा. मी. १।१।१५)
५ संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः (३।३)	तत्र संस्कारप्रबोधसम्भूतं अनुभूतार्थविषयं तदित्याकारं वेदनं स्मरणम् (प्र. न. त. ३।३)
	वासनोद्बोधहेतुका तदित्याकारा स्मृतिः (प्रमा. मी. १।२।३)

परीक्षामुखसूत्राणि	विभिन्नग्रन्थसूत्राणि
६ इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् (३।२०)	अप्रतीतमनिराकृतमभीप्सितं साध्यम् । (प्र. न. त. ३।१४)
	सिषाधयिषितमसिद्धमबाध्यं साध्यं पक्षः (प्रमा. मी. १।२।१३)
७ एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम् (३।३७)	पक्षहेतुवचनमवयवद्वयमेव परप्रतिपत्तेरङ्गं न दृष्टान्तादिवचनम् (प्र. न. त. ३।२८)
	न दृष्टान्तोऽनुमानाङ्गम् (प्रमा. मी. १।२।१८)
८ हेतोरुपसंहार उपनयः (३।५०)	हेतोः साध्यधर्मिण्युपसंहरणमुपनयः (प्र. न. त. ३।४९)
	धर्मिणि साधनस्योपसंहार उपनयः (प्रमा. मी. २।१।१४)
९ अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम् (५।१)	तत्रानन्तर्येण सर्वप्रमाणानामज्ञाननिवृत्तिः फलम् ।
	पारम्पर्येण केवलज्ञानस्य तावत्फलमौदासीन्यम् ।
	शेषप्रमाणानां पुनरुपादानहानोपेक्षाबुद्धयः (प्र. न. त. ६।३,४,५)
	अज्ञाननिवृत्तिर्वा । हानादिबुद्धयो वा (प्रमा. मी. १।१।३८,४०)
१० अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत् (६।४१)	तत्रापौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वात् दुःखवदिति साध्यधर्मविकलः । तस्यामेव प्रतिज्ञायां तस्मिन्नेव हेतौ परमाणुवदिति साधनधर्मविकलः । कलशवदित्युभयधर्मविकलः । (प्र. न. त. ६।६०,६१,६२)
	अमूर्तत्वेन नित्ये शब्दे साध्ये कर्मपरमाणुघटाः साध्यसाधनोभय विकलाः । (प्रमा. मी. २।१।२३)

वृत्तिकार अनन्तवीर्य

व्यक्तित्व और कार्य

जैनन्याय के साहित्य में दो अनन्तवीर्य का नाम मिलता है। इनमें से एक अनन्तवीर्य ने अकलंक के 'सिद्धिविनिश्चय' की टीका लिखी है। प्रभाचन्द्र ने 'न्यायकुमुदचन्द्र' में इनका स्मरण किया है और 'प्रमेयरत्नमाला' में अनन्तवीर्य ने प्रभाचन्द्र का स्मरण किया है। इससे सिद्ध है कि दोनों अनन्तवीर्य भिन्न हैं। उत्तरकालवर्ती होने से प्रमेयरत्नमाला के रचयिता अनन्तवीर्य को लघु अनन्तवीर्य के नाम से भी कहा जाता है। अपने टिप्पण के प्रारम्भ में टिप्पणकार ने इनका लघु अनन्तवीर्यदेव के नाम से ही उल्लेख किया है। इन्होंने परीक्षामुख के सूत्रों की संक्षिप्त किन्तु विशद व्याख्या की है। साथ ही चार्वाक, बौद्ध, सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्तदर्शन के कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों का स्पष्ट विवेचन एवं निराकरण किया है। इससे इनके गम्भीर पाण्डित्य का पता चलता है।

इनकी एक मात्र कृति प्रमेयरत्नमाला है। किन्तु यह एक ऐसी माला है जो कभी टूटने वाली नहीं है। यद्यपि इसकी रचना व्यक्तिविशेष के निमित्त से की गई है, तथापि यह ग्रन्थ न्यायशास्त्र के जिज्ञासुओं को सर्वदा न्यायशास्त्र का बोध कराता रहेगा। इन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपनी टीका को 'परीक्षामुख-पञ्जिका' कहा है और प्रत्येक समुद्देश के अन्त में दी गई पुष्पिकाओं में इसे 'परीक्षामुख-लघुवृत्ति' कहा है।

प्रमेयरत्नमाला की रचना में निमित्त

आचार्य अनन्तवीर्य ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में तथा अन्तिम प्रशस्ति में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि इन्होंने इस टीका की रचना वैजेय के प्रिय पुत्र हीरप के अनुरोध से शान्तिषेण के पठनार्थ की है। प्रशस्ति में वैजेय के ग्रामादि का कोई निर्देश नहीं है, पर उन्हें बदरीपाल वंश या जाति का ओजस्वी सूर्य कहा है। उनकी पत्नी का नाम नाणाम्बा था, जो अपने विशिष्ट गुणों के कारण रेवती, प्रभावती आदि नामों से उस समय संसार में प्रसिद्ध थीं। उनके दानवीर हीरप नामक पुत्र हुआ जो सम्यक्त्वरूप आभरण से भूषित था और जो लोक-हितकारी कार्यों को करने के लिए प्रसिद्ध था। उनके आग्रह से संभवतः उन्हीं के पुत्र शान्तिषेण के पढ़ने के लिए इस लघुवृत्ति की रचना की गई है। और उनके

निमित्त से की गई यह रचना आज जैनन्याय का अध्ययन करने के लिए सर्व-साधारण को पाठ्यपुस्तक के रूप में आदरणीय एवं पठनीय हो रही है।

समय—

यह निश्चित है कि प्रमेयरत्नमाला की रचना प्रमेयकमलमार्तण्ड के बाद हुई है। इसका उल्लेख स्वयं अनन्तवीर्य ने किया है। प्रमेयकमलमार्तण्ड के रचयिता प्रभाचन्द्र का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी है। इधर आचार्य हेमचन्द्र (वि० ११४५ से १२३०) की प्रमाणमीमांसा पर शब्द और अर्थ दोनों की दृष्टि से प्रमेयरत्नमाला का पूरा पूरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तथा प्रभाचन्द्र के प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र का प्रभाव प्रमेयरत्न-माला पर है।[1] अतः अनन्तवीर्य का समय प्रभाचन्द्र और हेमचन्द्र के बीच का सिद्ध होता है। इस प्रकार अनन्तवीर्य का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध मानना चाहिए। डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने भी प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्य के समय का यही अनुमान किया है जो उचित प्रतीत होता है। डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन ने भी प्रमेयरत्नमालाकार अनन्तवीर्य के समय का यही अनुमान किया है।

प्रमेयरत्नमाला का टिप्पण

परीक्षामुख की इस लघुवृत्ति की रचना संक्षिप्त होने के कारण अनेक स्थलों पर दुरूह है और कितने ही विषयों का तो केवल नाम-निर्देश ही किया गया है। उन सब स्थलों के स्पष्टीकरण के लिए एक टिप्पण ग्रन्थ की आवश्य-कता थी। संभवतः इसीलिए टिप्पणकार ने प्रत्येक कठिन और संक्षिप्त स्थल पर सरल और विस्तृत टिप्पण देकर इस वृत्ति को सर्व प्रकार से सुबोध बनाने का प्रयास किया है। यही कारण है कि प्रमेयरत्नमाला के परिमाण के बराबर ही इस टिप्पण का भी परिमाण हो गया है। यदि यह टिप्पण न रचा गया होता तो प्रमेयरत्नमाला के कितने ही स्थलों का अर्थ समझने में बड़ी कठिनाई होती।

---

१. प्रभेन्दुवचनोदारचन्द्रिकाप्रसरे सति।
माहशाः क्व नु गण्यन्ते ज्योतिरिङ्गणसन्निभाः ॥ ३ ॥
—प्रमेयरत्नमाला पृ० ४

प्रमेयरत्नमाला की विभिन्न प्रतियों में अनेक प्रकार के टिप्पण पाये जाते हैं। पर प्रस्तुत संस्करण में जो टिप्पण मुद्रित है वह सबसे प्राचीन, विस्तृत एवं स्पष्ट है। परिमाण में भी वह अन्य टिप्पणों से अधिक है अतः इसे ही प्रस्तुत संस्करण में दिया गया है[1]।

टिप्पणकार

यद्यपि इस टिप्पण के रचयिता ने इसके आदि या अन्त में कहीं पर भी अपने नाम आदि का कोई संकेत नहीं दिया है पर जब हम अष्टसहस्री के टिप्पण के साथ इस टिप्पण की तुलना करते हैं तो इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि जो लघु समन्तभद्र अष्टसहस्री के टिप्पणकार हैं वे ही इस प्रमेय-रत्नमाला के भी टिप्पणकार हैं। अपने कथन की पुष्टि में हम नीचे कुछ अव-तरण दे रहे हैं जिससे कि पाठक स्वयं ही दोनों के एककर्तृत्व को स्वीकार करने में सहमत हो सकेंगे।

(१) अष्टसहस्री में टिप्पण प्रारंभ करते हुए जो उत्थानिका दी गई है वह इस प्रकार है—

इह हि खलु पुरा स्वकीयनिरवद्यविद्यासंयमसम्पदा गणधरप्रत्येकबुद्धश्रुत-केवलिदशपूर्वाणां सूत्रकृन्महर्षीणां महिमानमात्मसात्कुर्वद्भिर्भगवद्भिरुमास्वामि-पादैराचार्यवर्यैरासूत्रितस्य तत्त्वार्थाधिगमस्य मोक्षशास्त्रस्य गन्धहस्त्याख्यं महाभाष्यमुपनिबध्नतः स्याद्वादविद्यागुरवः श्रीस्वामिसमन्तभद्राचार्यास्तत्र मङ्गलपुरस्सरस्तवविषयपरमाप्तगुणातिशयपरीक्षामुपक्षिप्तवन्तो देवागमाभि-धानस्य प्रवचनतीर्थस्य सृष्टिमापूरयाञ्चक्रिरे। तदनु सकलतार्किकचक्रचूडामणि-मरीचिमेचकितचरणनखकिरणो भगवान् भट्टाकलङ्कदेवस्तदेतस्याष्टशत्याख्येन भाष्ये-णोन्मेषमकार्षीत्। तदेवं महाभागैस्तार्किकार्कैरुपज्ञातां श्रीमता वादीभसिंहेनोप-लालितामाप्तमीमांसामलंचिकीर्षवः स्याद्वादभासितसत्यवाक्यगिरां चातुरीमावि-र्भावयन्तः प्रतिज्ञाश्लोकमाहुः 'श्रीवर्धमानमित्यादि' (अष्टसहस्री० पृ० १ टि०)

---

१. इसकी एक मात्र प्रति ललितपुर (उ० प्र०) के दि० जैन बड़ा मन्दिर के शास्त्रभण्डार में आज से ४० वर्ष पूर्व तक उपलब्ध थी। दुःख है कि किसी भले आदमी ने उसे ले जाकर वापिस नहीं लौटाया है। यदि किसी महानुभाव के पास यह प्रति हो तो वे उसे उक्त मन्दिर को वापिस लौटाने की कृपा करें।
—सम्पादक

अब ऊपर के सन्दर्भ का प्रमेयरत्नमाला के इस निम्न सन्दर्भ से मिलान कीजिए—

इह हि पुरा स्वकीयनिरवद्यविद्यासंयमसम्पदा गणधरप्रत्येकबुद्धश्रुतकेवलि-सूत्रकृन्महर्षीणां महिमानमात्मसात्कुर्वन्तोऽमन्दतो निरवद्यस्याद्वादविद्यानन्दी-नाख्याख्यानैकप्रवीणाः सकलतार्किकचक्रचूडामणिमरीचिमेचकितचरणनखकिरणाः कविगमकवादिवाग्मित्वलक्षणचतुर्विधपाण्डित्यविशालाधिपाधिराजिहृषस्याः विनय-विनतविनेयजनसहितनिजानुभवाः श्रीमदकलङ्कदेवाः प्रादुरासन्। तैश्च सप्त प्रकरणानि विरचितानि। × × × तेषामतिविषमत्वान्मन्दधियामवगन्तुमशक्य-त्वात् तद्व्युत्पत्त्युत्पादनार्थं उदधिमुद्धृत्य धारानगरीवासनिवासवासिनः श्रीमन्मा-णिक्यनन्दिभट्टारकदेवाः परीक्षामुखाख्यं प्रकरणमारचयाम्बभूवुः।

—प्रमेयरत्नमाला पृ० १ टि०

दोनों सन्दर्भों के रेखाङ्कित वाक्य शब्दशः समान हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य समताएँ भी द्रष्टव्य हैं—

(२) 'विवर्त' शब्द की परिभाषा देते हुए अष्टसहस्री पृ० ११ टिप्पणाङ्क ४२ पर यह श्लोक पाया जाता है—

पूर्वाकारापरित्यागादुत्तरः प्रतिभाति चेत्।
विवर्तः स परिज्ञेयो दर्पणे प्रतिबिम्बवत् ॥

ठीक यही श्लोक प्रमेयरत्नमाला के पृ० १२३ के टिप्पणाङ्क ११ में दिया हुआ है।

(३) अष्टसहस्री पृ० १९ टिप्पणाङ्क १६ पर 'भावना' की परिभाषा में यह श्लोक कोष्ठकादि पाठ के साथ पाया जाता है—

तेन (वाक्येन) भूतिषु (यागक्रियासु) कर्तृत्वं प्रतिपन्नस्य वस्तुनः (पुरुषादेः)।
प्रयोजकक्रियामाहुर्भावनां भावनाविदः ॥

ठीक इसी प्रकार से यही श्लोक प्रमेयरत्नमाला पृ० २२३ के टिप्पणाङ्क २ में भी पाया जाता है।

(४) जिस प्रकार से अष्टसहस्री के टिप्पण में 'सौगतमतमाशङ्क्य' इत्यादि उत्थानिका वाक्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार से प्रमेयरत्नमाला के टिप्पणों में भी इस प्रकार के वाक्य स्थल-स्थल पर देखने में आते हैं।

(५) जिस प्रकार से अष्टसहस्री के टिप्पण के आदि या अन्त में कहीं भी टिप्पणकार ने अपने नाम आदि का कोई उल्लेख नहीं किया है, उसी प्रकार

से प्रमेयरत्नमाला के इस प्रस्तुत टिप्पण में नाम आदि का कहीं कोई संकेत नहीं मिलता।

इन सब कारणों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि दोनों के टिप्पणकार एक ही व्यक्ति हैं। प्रमेयरत्नमाला के टिप्पणकार 'अष्टसहस्री' से भलीभाँति परिचित थे, यह उनके पृ० १२७ पर आये हुए 'देवागमालङ्कारे' पद पर टिप्पणी में 'अष्टसहस्री' के नामोल्लेख से ही सिद्ध है।

प्रमेयरत्नमाला के प्रस्तुत टिप्पण पर आद्योपान्त एक दृष्टि डालने पर टिप्पणकार की जो विशेषताएँ विशेष रूप से चित्त पर अङ्कित होती हैं, उनसे उनके अगाध पाण्डित्य का परिचय मिलता है। वे विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१. प्रमेयरत्नमाला में आये हुए प्रायः सभी अनुमान प्रयोगों या लक्षणों के प्रत्येक पद की सार्थकता को बतलाना।

२. प्रायः नाम मात्र से सूचित पारिभाषिक शब्दों की परिभाषाएँ देना।

३. सूत्र या वृत्तिगत प्रत्येक वस्तु तत्त्व का अर्थ प्रकट करना।

४. अपने कथन की पुष्टि में शास्त्रीय प्रमाणों का उल्लेख करना।

टिप्पणकार कौन ?

टिप्पण-सम्बन्धी उक्त विशेषताओं के जान लेने के पश्चात् स्वभावतः यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इसके रचयिता कौन आचार्य हैं ? प्रयत्न करने पर भी इसका कोई लिखित प्रमाण हमें नहीं मिल सका। किन्तु जैसा कि ऊपर बतलाया गया है-यतः अष्टसहस्री के टिप्पण के साथ प्रस्तुत टिप्पण का अतीव साम्य दृष्टिगोचर होता है-अतः यही अनुमान होता है कि अष्टसहस्री के टिप्पणकार लघु समन्तभद्र ही इसके भी रचयिता हैं। पूना के गवर्नमेन्ट पुस्तकालय में अष्टसहस्री की जो प्राचीन प्रति उपलब्ध है उसमें टिप्पणकार के रूप में 'लघु समन्तभद्र' का नाम दिया हुआ है। ये कर्णाटक प्रान्त के निवासी थे, यह बात प्रमेयरत्नमाला के पृ० ५४ के टिप्पणाङ्क १० में दिये गये 'कर्णाटक भाषायां मारि' वाक्य से सिद्ध है। इनके टिप्पण को देखते हुए यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि टिप्पणकार सभी मत-मतान्तरों के विशिष्ट अभ्यासी थे।

हिन्दी वचनिका

प्रमेयरत्नमाला की हिन्दी वचनिका ढूंढारी (राजस्थानी) भाषा में आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व श्रीमान् पं० जयचन्द्र जी छावड़ा ने की थी जो कि आज से

लगभग ४० वर्ष पूर्व श्रीअनन्तकीर्तिग्रन्थमाला बम्बई की ओर से मुद्रित हो चुकी है। पं० जी की उक्त वचनिका को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनके सामने भी यही टिप्पण था जो कि प्रस्तुत संस्करण में मुद्रित है। इसका प्रमाण यह है कि जो उत्थानिका इस टिप्पण के प्रारम्भ में दी गई है उसी के अनुवाद रूप में उन्होंने भी अपनी वचनिका प्रारम्भ की है। तथा स्थान-स्थान पर जो उन्होंने भावार्थ दिये हैं उससे भी उक्त बात की पुष्टि होती है। पं० जी जैनसिद्धान्त और न्याय के मर्मज्ञों में थे। अन्य वचनिकाओं के समान उनकी यह वचनिका भी ग्रन्थ के मर्म को प्रकट करती है। इसकी रचना उन्होंने वि० सं० १८६१ के आषाढ़ सुदी चतुर्थी को पूर्ण की है यह बात उनकी अन्तिम प्रशस्ति से प्रकट है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
दीपावली-श्रीवीरनिर्वाण
सम्वत् २४९०

उदयचन्द्र जैन

सम्पादकीय

आज से ४२ वर्ष पूर्व जब मैं पढ़ रहा था, उसी समय मेरे पूज्य गुरुवर श्री पं० घनश्याम दास जी न्यायतीर्थ को दि० जैन बड़ा मन्दिर, ललितपुर से १५वीं शताब्दी की अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित 'प्रमेयरत्नमाला' की शुद्ध प्रति प्राप्त हुई थी, जिस पर अज्ञातनामा विद्वान् की एक सुविस्तृत टिप्पणी भी लिखी थी। पूज्य गुरुवर उसी शुद्ध प्रति से हमलोगों को प्रमेय-रत्नमाला पढ़ाते थे। अध्ययन काल में ही मैंने अपनी मुद्रित पुस्तक को उस हस्तलिखित प्रति से शुद्ध कर लिया था और उसकी टिप्पणी को भी यथावत् प्रतिलिपि कर के रख लिया था, जो आज पाठक के समक्ष छप कर प्रस्तुत है।

आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन तथा उनके संकलन, संवर्धन, संपादन, अनुवाद आदि करने में पूज्य गुरुजी विशेष रुचि रखते थे। उस समय गुरुजी के पद्म-पुराण' का अनुवाद समाप्त हो रहा था। तदनु वे 'अष्टसहस्री'[1] का अनुवाद करने का विचार कर रहे थे। गुरुजी की कृपा विशेष मेरे ऊपर रहती थी। 'प्रमेयरत्नमाला' के कथा-प्रसंग में एक दिन गुरुजी ने कहा—'देखो हीरा, 'अष्टसहस्री' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके अनुवाद में अधिक समय लग सकता है, मैं स्थविर हो चुका हूँ, अतः इस अनुवाद की चर्चा अभी लोगों में मत करना ?' यह सुनकर मैंने कहा—'तो गुरुजी प्रमेयरत्नमाला का ही अनुवाद कर दीजिए। इससे तो हमलोगों को भी पठन-पाठन में सुविधा होगी।' यह सुनते ही गुरुजी बोल उठे—'अरे, इसका अनुवाद हम क्या करें—इसे तो अब तू ही पूरा करेगा।'

मैं नजर नीची करके आनन्द से गद्गद हो कर चुप रह गया और मन में कहा—'सत्यं भवतु त्वद्वचः।'

१. 'अष्टसहस्री' आचार्य विद्यानन्दिरचित जैनन्याय का महत्त्वपूर्ण क्लिष्ट ग्रंथ है। राष्ट्रपति डॉ० सर राधाकृष्णन् महोदय ने इस ग्रन्थ को दार्शनिक ग्रन्थों में मूर्धन्य माना है। कहा भी है:—

'श्रोतव्याष्टसहस्री श्रुतैः किमन्यैः सहस्रसंख्यानैः।
विज्ञायेत ययैव स्वसमय-परसमयसद्भावः॥'

यहाँ यह लिखते हुए नेत्र अश्रु-सिक्त हो रहे हैं—कि मेरे, पठन-कालके समाप्त होने के कुछ समय बाद ही पूज्य गुरुजी का स्वर्गवास हो गया और उनका प्रारम्भ किया हुआ अष्टसहस्री का अनुवाद पूरा नहीं हो सका।

सन् १९२४ में जब मैं श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशी का धर्माध्यापक था—तो मैंने दीपावली के शुभ अवसर पर प्रमेयरत्नमाला को टिप्पणी-सहित प्रकाशित करने का विचार किया था, किन्तु उसी समय १३ नवम्बर को मेरे ज्येष्ठ मझले भाई का अचानक स्वर्गवास होगया और मेरे सभी अरमानों पर पानी पड़ गया। प्रमेयरत्नमाला का कार्य जहाँ का तहाँ रह गया।

सन् १९४९ में जब मैं मा० ब० दि० जैन महाविद्यालय ब्यावर में धर्माध्यापक और श्वे० जैन संस्था में न्यायाध्यापक नियुक्त हुआ तब मुझे आ० हेमचन्द्र-रचित प्रमाणमीमांसा को पढ़ाते हुए प्रमेयरत्नमाला के अनुवाद करने का भाव उदित हुआ। इसका कारण यह था कि प्रमाणमीमांसा के मूल सूत्रों की रचना परीक्षामुख के सूत्रों को[1] सामने रखकर और उसकी स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना प्रमेयरत्नमाला को पल्लवित करते हुए शब्द-परिवर्तन के द्वारा की गई है फिर भी उस ग्रन्थ को आ० हेमचन्द्र पूरा नहीं कर सके या किया भी होगा तो वह आज कहीं भी पूरा उपलब्ध नहीं है। प्रारम्भ का डेढ़ अध्याय मात्र ही उपलब्ध एवं मुद्रित है। यतः अभ्यासियों को संक्षेपरूप में अधिक परिचय प्रमेयरत्नमाला से ही प्राप्त होता है, अतः मैंने भी श्वे० संस्था में इसकी उपयोगिता बतलाई। वहाँ के अधिकारी श्री पूनमचन्द्रजी ने कहा—पहले आप न्याय के प्रारम्भिक जिज्ञासुओं के लिए 'प्रमाणनयतत्त्वालोक'[2] का अनुवाद कर दीजिए। मैंने तभी उसका अनुवाद करके संस्था को दे दिया और वर्षों तक उस संस्था में उसी हस्त-लिखित कापी से पठन-पाठन होता रहा।

उसके कुछ दिनों पश्चात् दि० जैन महाविद्यालय में न्याय का एक पाठ पढ़ाने को मुझे दिया गया और तब मैंने प्रमेयरत्नमाला के अनुवाद का कार्य प्रारंभ कर दिया। परन्तु शायद यह कार्य तब दैव को स्वीकार नहीं था और

१. इन दोनों ग्रन्थों के कुछ सूत्रों की तुलना प्रस्तावना में की गई है और विस्तृत तुलना परिशिष्ट में की गई है।

२. इसकी रचना भी परीक्षामुख के सूत्रों का शब्द-परिवर्तन के साथ श्वे० आ० वादिदेव सूरि ने की है। इसकी भी तुलना प्रस्तावना और परिशिष्ट में की गई है।

अकस्मात् ही मैंने स्थान-परिवर्तन कर लिया और वह कार्य तथैव रह गया।

इसके पश्चात् सिद्धान्त के महान् ग्रन्थराज धवल-जयधवल के सम्पादन, प्रकाशन आदि कार्यों में मैं इतना व्यस्त होगया और गार्हस्थिक विकट संकटों ने ऐसा दबा गया कि पूरे ३० वर्ष तक मैं प्रमेयरत्नमाला के अनुवाद को आगे बढ़ा नहीं सका — वह ज्यों का त्यों पड़ा रह गया।

वीर-सेवा मन्दिर में रहते समय जब उसके संस्थापक ने मेरे अन्यतम प्रिय शिष्य श्री दरबारीलाल जी कोठिया, न्यायाचार्य को उत्तराधिकारी बनाया तब मैंने उनका अभिनन्दन करते हुए कहा—लोग श्री कोठिया जी का स्वागत पुष्पमालाओं से कर रहे हैं—पर मैं उन्हें 'प्रमेयरत्नमाला' से सम्मानित करता हूँ और आशा करता हूँ कि मेरी चिर-अभिलषित वस्तु उनके द्वारा शीघ्र प्रकाश में आवेगी। मेरी हार्दिक भावना थी कि यह कार्य उनके ही द्वारा सम्पन्न हो, पर योगायोग से वैसा नहीं हो सका इसका मुझे खेद है।

इस बीच प्रमेयरत्नमाला अप्राप्य हो गई और परीक्षा के पाठ्यक्रम में निहित होने के कारण उसकी चारों ओर से मांग होने लगी। मेरे जिन परमस्नेही अन्तरङ्ग मित्रों को मेरे पास टिप्पण होने आदि की बात ज्ञात थी और जब मैं अध्यापनादि कार्यों से विमुक्त होकर अपनी जन्मभूमि में रहते हुए भविष्य के निर्माण में संलग्न था बार-बार प्रेरणा के पत्र पहुँचने लगे कि आप सानुवाद प्रमेयरत्नमाला को प्रकाशित कर दीजिए, तब मैं प्रमेयरत्नमाला की पाण्डुलिपि लेकर काशी आया और चौखम्बा-संस्कृत सीरीज के अधिकारियों से मिला और यह लिखते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि उन्होंने बड़े हर्ष और उल्लास के साथ अपने चौखम्बा विद्याभवन में संस्कृत ग्रन्थमाला से प्रकाशन की स्वीकृति दे दी और फलस्वरूप यह ग्रन्थ पाठकों के हाथों में है।

जब ग्रंथ छप कर समाप्ति पर आया तो प्रस्तावना लिखाने की चिन्ता हुई। एक दिन मैंने श्री उदयचन्द्रजी जैन के पास पहुँच कर प्रस्तावना लिखने का निवेदन किया। उन्होंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। आप इतने सरल और मिलनसार हैं कि मेरी अस्वस्थता में भी चारपाई के पास बैठकर प्रमेयरत्नमाला के कई स्थलों के संशोधन और परिशिष्ट-निर्माण का कार्य कराते रहे हैं। आप के विषय में और कुछ न कहकर इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आप सर्व-दर्शनों के विशाल गगन में अपने नाम के अनुरूप उदीयमान चन्द्र ही हैं और एक दिन आयगा जब दार्शनिक जगत् को आपकी अनुपम कृतियों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा।

इस प्रमेयरत्नमाला को प्रकाश में लाने के लिए जिन अन्तरंग मित्रों की वर्षों से प्रेरणा रही है, वे मुझे कृतज्ञताज्ञापनार्थ अपना नाम भी देने का प्रबल विरोध कर रहे हैं। अतः मैं नामोल्लेख के बिना ही उन सभी बन्धुओं का हार्दिक आभार मानता हूँ।

श्री पं० अमृतलाल जी जैन प्राध्यापक वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन में आवश्यक सभी ग्रन्थों का समायोग जोड़ा, समय-समय पर आवश्यक सुझाव दिये, हर प्रकार से मेरी सहायता करते रहे और अपनी अमृतमयी वाणी से सदा सन्तुष्ट करते रहे—उनका तथा श्रीमान् पं० कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री, आचार्य-स्याद्वाद महाविद्यालय और उनके परिकर के सभी विद्वानों से समय-समय पर सुझाव मिलते रहे और वहां के सरस्वती भवन का भी भरपूर उपयोग किया गया है। इसलिए मैं उक्त सभी विद्वानों का बहुत-बहुत आभारी हूँ।

अपने अनुवाद के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है—दार्शनिक ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करना कितना कठिन होता है यह सभी जानते हैं, फिर भी मैंने अनुवाद को सरल भाषा में लिखने का भरसक प्रयत्न किया है। मूल का वृत्तिगत सभी संक्षिप्त विषयों को विशेषार्थों के द्वारा स्पष्ट कर दिया है। यद्यपि प्रस्तुत टिप्पण की महत्ता पर प्रस्तावना में प्रकाश डाला गया है, तथापि इतना और बताना उचित समझता हूँ कि यदि यह विस्तृत टिप्पण सामने न होता, तो अधिकांश विशेषार्थों का लिखा जाना सम्भव भी न होता। मैं अपने कार्य में कितना सफल हुआ हूँ यह बताना मेरा काम नहीं है। फिर भी विविध दर्शनों की चर्चा से भरपूर इस संक्षिप्त और अति गूढ़ ग्रन्थ के हार्दस्पष्टीकरण में दृष्टिदोष से यदि कुछ अन्यथा लिखा गया हो तो मैं विद्वानों से प्रार्थना करूंगा कि वे समुचित संशोधन सुझावें—जिन्हें कि आगामी संस्करण में सुधारा जा सके। यदि दर्शनशास्त्र के अभ्यासियों को इससे कुछ साहाय्य प्राप्त होगा तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व स्व० स्वनामधन्य पं० जयचन्द्र जी छाबड़ा (जयपुर) ने प्रमेयरत्नमाला की एक हिन्दी वचनिका ढूंढारी भाषा में लिखी थी जो मुनि अनन्त कीर्तिग्रन्थमाला (बम्बई) से प्रकाशित हुई थी और आज वह अप्राप्य है। उनकी उस वचनिका से ग्रन्थ के कितने ही मार्मिक स्थलों को समझने में मुझे बहुत सहायता मिली है, इसलिए मैं उन स्वर्गीय आत्मा के प्रति अपनी

हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ। सारा ही जैन समाज उनके द्वारा किये गये जैनसिद्धान्त के महान ग्रन्थों की भाषा टीका के लिए 'यावच्चन्द्र-दिवाकरौ' ऋणी रहेगा।

यहां एक बात मूलग्रन्थ की सूत्र-संख्या के लिए कह देना आवश्यक है—अभी तक जो परीक्षामुख और उसकी संस्कृत टीकाएँ छपी हैं, उन सब में तीसरे समुद्देश की सूत्र-संख्या १०१ है। पर मुझे सूत्रकार की पूर्वापर रचना-शैली से वह कुछ कम जंचती थी। सूत्रकार ने प्रत्यभिज्ञानका स्वरूप और भेद एक ही सूत्राङ्क ५ में कहे—पर उनके उदाहरण उससे आगे ४ सूत्रों में मुद्रित मिलते हैं। जो सूत्राङ्क ५ की रचना को देखते हुए उनके भेदों के उदाहरण उसके आगे के एक ही छठे सूत्र में होना चाहिए। उसकी पुष्टि भी पं० जयचन्द्रजी की हिन्दी वचनिका से ही हुई है।

अन्त में मैं चौखम्बा संस्कृत सीरीज, तथा चौखम्बा विद्या भवन के उदीयमान संचालक, बन्धुद्वय श्री मोहनदास जी गुप्त तथा श्री विट्ठलदास जी गुप्त का बहुत-बहुत आभारी हूँ कि जिनके असीम सौजन्य से वर्षों से पड़ा हुआ यह ग्रन्थ कुछ दिनों में ही प्रकाश में आ गया है और आज ४५ वर्ष पूर्व में दिया गया गुरु का आशीर्वाद मूर्तरूप धारण करके पाठकों के सम्मुख उपस्थित है। श्रीमान् पं० रामचन्द्र जी झा व्याकरणाचार्य और उनके सह-योगी सभी विद्वानों का ग्रन्थ के प्रकाशन-काल में मेरे साथ बहुत ही प्रेममय व्यवहार रहा है और समय-समय पर उनके आवश्यक संशोधन और सुझाव मिलते रहे हैं, इसके लिए मैं उन सब विद्वानों का बहुत आभारी हूँ।

कार्त्तिक कृष्ण १२
वि० सं०२०२०

—हीरालाल शास्त्री

विषय-सूची

प्रथम समुद्देश १–४१

मङ्गलाचरण १
ग्रन्थ निर्माण का प्रयोजन २
सूत्रकार का आदिश्लोक और ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय ३
सम्बन्ध, अभिधेय और शक्यानुष्ठान इष्ट प्रयोजन का प्रतिपादन ८
सूत्रकार द्वारा इष्टदेवता नमस्कार सिद्धि १०
प्रमाण के विषय में चार प्रकार की विप्रतिपत्तियाँ १२
प्रमाण का लक्षण और लक्षणगत विशेषणों की सार्थकता १६
प्रमाण के ज्ञान विशेषण का समर्थन १८
अपूर्वार्थ का लक्षण २२
स्वव्यवसाय का विवेचन २४
ज्ञान में स्वव्यवसायात्मकता की सिद्धि २७
अभ्यासदशा में स्वतः और अनभ्यासदशा में परतः प्रामाण्य की सिद्धि ३०
'प्रामाण्य स्वतः होता है और अप्रामाण्य परतः होता है,' इस विषय में मीमांसकों का पूर्वपक्ष ३१
मीमांसकों के उक्त पक्ष का निराकरण ३५

द्वितीय समुद्देश ४२–१३२

प्रमाण के भेद ४२
'अनुमान प्रमाण नहीं है' इस विषय में चार्वाक का पूर्वपक्ष ४३
चार्वाक के उक्त पक्ष का निराकरण ४४
स्मृति में प्रामाण्यसिद्धि ४९
प्रत्यभिज्ञान में प्रामाण्यसिद्धि ५१
तर्क में प्रामाण्यसिद्धि ५७
प्रत्यक्ष का लक्षण ६३
वैशद्य का लक्षण ६८
सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का लक्षण ७१
मतिज्ञान के ३३६ भेदों का वर्णन ७०
स्वसंवेदन प्रत्यक्ष का मानस और इन्द्रिय प्रत्यक्ष में अन्तर्भाव ७३
अर्थ और आलोक में ज्ञान के प्रति कारणता के अभाव की सिद्धि ७४

ज्ञान में तदुत्पत्ति और तदाकारता के विषय में बौद्धों का पूर्व पक्ष ७६
ज्ञान में तदुत्पत्ति के अभाव में भी अर्थप्रकाशकत्व की सिद्धि ७८
प्रतिनियत अर्थ की व्यवस्था का नियम ७९
ताद्रूप्य, तदुत्पत्ति और तदध्यवसाय में दोष ८२
बौद्धाभिमत अर्थाकारता का निराकरण तथा कारण को विषय मानने में दोष ८३
अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष का लक्षण ८४
ज्ञान को साकार और इन्द्रियजन्य मानने में दोष ८५
सर्वज्ञाभाव के विषय में मीमांसकों का पूर्व पक्ष ८८
मीमांसकों के उक्त पक्ष के निराकरणपूर्वक सर्वज्ञसिद्धि ९८
सृष्टिकर्तृत्व के विषय में नैयायिकों का पूर्व पक्ष १०४
नैयायिकों के उक्त पक्ष का निराकरण १२१
ब्रह्म को सत्ता के विषय में वेदान्तियों का पूर्व पक्ष १२४
ब्रह्म का निराकरण १३३

तृतीय समुद्देश १३३–२४१

परोक्ष का लक्षण और भेद १३३
स्मृति तथा प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप और भेद १३५
तर्क का स्वरूप १३८
अनुमान का स्वरूप तथा हेतु का लक्षण १४०
बौद्धाभिमत त्रैरूप्य का निराकरण १४१
नैयायिकाभिमत पाञ्चरूप्य का निराकरण १४५
अविनाभाव का स्वरूप १४६
सहभाव तथा क्रमभाव नियम का विषय १४७
साध्य का लक्षण १४८
साध्य लक्षणगत असिद्ध पद का प्रयोजन १४९
इष्ट और अबाधित पदों का प्रयोजन १५०
कौन विशेषण किसकी अपेक्षा से है १५१
कहाँ क्या साध्य होता है तथा पक्ष का लक्षण १५२
धर्मी सिद्ध होता है १५४
विकल्पसिद्ध धर्मी में साध्य की व्यवस्था १५५
प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध धर्मी में साध्य की व्यवस्था १५८
व्याप्तिकाल में साध्य का नियम १६०

पक्ष के प्रयोग की आवश्यकता १६१
पक्ष और हेतु ही अनुमान के अङ्ग हैं, उदाहरण अनुमान का अङ्ग नहीं १६५
उपनय और निगमन अनुमान के अङ्ग नहीं हैं १६९
समर्थन ही हेतु का रूप अथवा अनुमान का अङ्ग है १७०
शास्त्र में दृष्टान्तादिक को भी अनुमान का अङ्ग माना है १७०
दृष्टान्त के भेद तथा अन्वय दृष्टान्त का स्वरूप १७१
व्यतिरेक दृष्टान्त तथा उपनय का स्वरूप १७२
निगमन का स्वरूप तथा अनुमान के भेद १७५
स्वार्थानुमान और परार्थानुमान का लक्षण १७४
वचन को परार्थानुमान कहने का कारण १७६
हेतु के भेद १७७
उपलब्धि और अनुपलब्धि दोनों विधि और प्रतिषेध साधक हैं १७८
विधि साधक अविरुद्धोपलब्धि के छह भेदों का वर्णन १८९
बौद्धों के प्रति कारण हेतु की सिद्धि १८०
भावी मरण और अतीत जाग्रत् बोध अरिष्ट और उद्बोध के कारण नहीं हैं १८४
प्रतिषेध साधक विरुद्धोपलब्धि के छह भेद १९०
प्रतिषेध साधक अविरुद्धानुपलब्धि के सात भेद १९२
विधिसाधक विरुद्धानुपलब्धि के तीन भेद १९६
कार्य का कार्य, कारण विरुद्ध कार्य आदि हेतुओं का उक्त हेतुओं में अन्तर्भाव १९८
व्युत्पन्न पुरुष के लिए अनुमान प्रयोग का नियम २००
आगम का लक्षण २०३
मीमांसकों के द्वारा वर्णों में व्यापकत्व और नित्यत्व की सिद्धि २०४
वेद में अपौरुषेयत्व की सिद्धि २०५
वर्णों में व्यापकत्व और नित्यत्व का खण्डन २११
वेद में अपौरुषेयत्व का निराकरण और पौरुषेयत्व की सिद्धि २१५
शब्दादि वस्तु प्रतिपत्ति के हेतु होते हैं २२२
बौद्धाभिमत शब्द का वाच्य अन्यापोह का निराकरण २२३

चतुर्थ समुद्देश २४२–२९९

प्रमाण का विषय २४२

सांख्याभिमत प्रधान का विवेचन	२४२
प्रधान में कर्तृत्व का निषेध	२४४
विशेष ही तत्त्व है, सामान्य नहीं, इस विषय में बौद्धों का पूर्वपक्ष	२५३
बौद्धाभिमत क्षणिकत्व सिद्धि	२५७
बौद्धाभिमत विशेषतत्त्व का निराकरण	२६१
क्षणिकत्व निरास	२६६
यौगाभिमत परस्पर निरपेक्ष सामान्य-विशेष का निराकरण	२७२
पदार्थ को सामान्य-विशेष रूप मानने में विरोधादि आठ दोषों का उद्भावन	२७६
विरोधादि दोषों का परिहार	२७८
समवाय निरास	२८३
अनेकान्तात्मक वस्तु का समर्थन	२८६
सामान्य के भेद तथा तिर्यक् सामान्य का स्वरूप	२८८
ऊर्ध्वतासामान्य का स्वरूप तथा विशेष के भेद	२८९
पर्याय विशेष का लक्षण	२९०
आत्मा में व्यापकत्व का निराकरण	२९१
वटकणिकामात्र आत्मा का निरास	२९४
भूतचैतन्यवाद का निरास	२९६
आत्मा में स्वदेहपरिमाणत्व की सिद्धि	२९७
व्यतिरेक विशेष का स्वरूप	२९८
(पञ्चम समुद्देश)	**३००-३०२**
प्रमाण का फल	३००
प्रमाण से फल में कथंचित् भेदाभेद की व्यवस्था	३०१
षष्ठ समुद्देश	**३०३-३५३**
प्रमाण के स्वरूपाभासों का वर्णन	३०३
प्रत्यक्षाभास और परोक्षाभास	३१४
स्मरणाभास और प्रत्यभिज्ञानाभास	३१५
तर्काभास, अनुमानाभास और पक्षाभास	३१६
हेत्वाभास के भेद तथा असिद्ध हेत्वाभास	३१९
विरुद्ध हेत्वाभास	३२२
अनैकान्तिक हेत्वाभास	३२३
अकिञ्चित्कर हेत्वाभास	३२४

अन्वय दृष्टान्ताभास	३२७
व्यतिरेक दृष्टान्ताभास	३२८
बालप्रयोगाभास	३३०
आगमाभास	३३२
संख्याभास	३३३
विषयाभास	३३६
फलाभास	३३९
स्वपक्षसाधन और परपक्षदूषण व्यवस्था	३४३
नैगमादि सात नयों के स्वरूप का विवेचन	३४४
वाद और पत्र का लक्षण	३५१
सूत्रकार का अन्तिम श्लोक	३५३
परिशिष्टम्	**३५५-३९२**
परीक्षामुख-सूत्रपाठः	३५५
परीक्षामुखसूत्राणां तुलना	३६३
परीक्षामुखसूत्रगत पारिभाषिक शब्द-सूची	३६९
प्रमेयरत्नमालागत गद्यावतरण-सूची	३७०
,, ,, पद्यावतरण-सूची	३७१
प्रमेयरत्नमालाकाररचित श्लोक-सूची	३७३
प्रमेयरत्नमालागत पारिभाषिक शब्द-सूची	३७४
,, ,, दार्शनिक नाम-सूची	३८१
,, ,, ग्रन्थमाला-सूची	,,
,, ,, विशिष्टनाम-सूची	,,
टिप्पणगत श्लोक-सूची	३८२
,, पारिभाषिक शब्द-सूची	३८४
,, दार्शनिक नाम-सूची	३९१
,, ग्रन्थनाम-सूची	३९२
,, आचार्य नाम-सूची	,,
,, नगरी-देश-नाम-सूची	,,

प्रमापक ग्रन्थसूची

अष्टशती	अकलङ्क देव
अष्टसहस्री	विद्यानन्दी
आप्तमीमांसा	समन्तभद्र
जैन दर्शन	डा० महेन्द्रकुमार
तत्त्वार्थ श्लोक-वार्तिक	विद्यानन्दी
तत्त्वार्थसूत्र	उमास्वाति
तत्त्वसंग्रह	शान्तरक्षित
तर्कभाषा	केशव मिश्र
तर्कभाषा	मोक्षाकरगुप्त
तर्कसंग्रह	अन्नं भट्ट
दर्शन दिग्दर्शन	राहुल सांकृत्यायन
न्यायकुसुमाञ्जलि	उदयन
न्यायदीपिका	धर्मभूषण
न्यायबिन्दु	धर्मकीर्ति
न्यायभाष्य	वात्स्यायन
न्यायसूत्र	गौतम
न्यायमञ्जरी	जयन्त भट्ट
न्यायवार्तिक	उद्योतकर
न्यायविनिश्चय	अकलङ्क
न्यायावतार	सिद्धसेन
प्रमाणनय-तत्त्वालोक	देवसूरि
प्रमाणपरीक्षा	विद्यानन्दी
प्रमाणमीमांसा	हेमचन्द्र
प्रमाणवार्तिक	धर्मकीर्ति
प्रमाणवार्तिकालङ्कार	प्रज्ञाकर गुप्त
प्रमाणसमुच्चय	दिङ्नाग
प्रमेयकमलमार्तण्ड	प्रभाचन्द्र
बृहती	प्रभाकर
बृहदारण्यक उपनिषद्	
भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय
माध्यमिक कारिका	नागार्जुन
मीमांसा श्लोक-वार्तिक	कुमारिल
योगदर्शन व्यास-भाष्य	व्यास
लघीयस्त्रय	अकलङ्क
विग्रहव्यावर्तिनी	नागार्जुन
विशेषावश्यकभाष्य	जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण
वैशेषिक सूत्र	कणाद
शास्त्रदीपिका	पार्थसारथी
सर्वदर्शनसंग्रह	माधवाचार्य
सांख्यकारिका	ईश्वरकृष्ण
स्वयम्भूस्तोत्र	समन्तभद्र

॥ श्रीः ॥

प्रमेयरत्नमाला

'चिन्तामणि' हिन्दीव्याख्योपेता

'नतामरशिरोरत्नप्रभाप्रोतनखत्विषे ।
नमो जिनाय दुर्वारमारवीरमदच्छिदे ॥१॥

श्लोकार्थ—नम्रीभूत चतुर्निकाय देवोंके मुकुटोंमें लगे हुए मणियोंकी प्रभासे जिनके चरण-कमलोंके नखोंकी कान्ति देदीप्यमान हो रही है, और जो दुर्निवार पराक्रमवाले कामदेवके मदको छेदनेवाले हैं; ऐसे श्रीजिनदेवको हमारा नमस्कार हो ॥ १ ॥

उत्थानिका—इसी भारतवर्षमें सैकड़ों वर्ष पूर्व श्रीमदकलङ्कदेव पैदा हुए हैं, जो अपने निर्दोष ज्ञान और संयमरूप सम्पदासे प्रत्येकबुद्ध, श्रुत-केवली और सूत्रकार महर्षियोंकी महिमाको धारण करनेवाले थे; निरवद्य स्याद्वाद विद्यारूप नर्तकीके नर्तन करानेमें प्रवीण आचार्योंमें अद्वितीय थे; बड़े-बड़े तार्किकचक्रचूड़ामणि भी जिनके चरणोंकी सेवामें निरन्तर उपस्थित रहते थे; कवित्व (कविता करना), गमकत्व (सूत्रके रहस्यका उद्घाटन करना), वादित्व (शास्त्रार्थमें वादियोंको पराजित करना) और वाग्मित्व (वक्तृत्व-

(२,३,४ नं० की टिप्पणी पृ० २ म देखें)

१. इह हि पुरा स्वकीयनिरवद्यविद्यासंयमसम्पदा गणधरप्रत्येकबुद्धश्रुतकेवलिसूत्रकृन्महर्षीणां महिमानमात्मसात्कुर्वन्तो [illegible] श्रीमदकलङ्कदेवाः प्रादुरासन् । तैश्च सप्तप्रकरणानि विरचितानि । कानि तानीति चेदुच्यते— [illegible] चूलिकाप्रकरणं चेति । [illegible] परीक्षामुखाख्यं प्रकरणमारचयाम्बभूवुः । [illegible]

परिशिष्टम्

परीक्षामुख-सूत्रपाठः

सूत्राङ्काः		पृष्ठाङ्काः
प्रथमः समुद्देशः		**१-४१**
	प्रमाणादर्थसंसिद्धस्तदाभासाद्विपर्ययः । इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥	६
१.	स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ।	१३
२.	हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ।	१८
३.	तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ।	१९
४.	अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ।	२२
५.	दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक् ।	२३
६.	स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ।	२४
७.	अर्थस्येव तदुन्मुखतया ।	,,
८.	घटमहमात्मना वेद्मि ।	२५
९.	कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ।	,,
१०.	शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ।	२७
११.	को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव तथा नेच्छेत् ।	,,
१२.	प्रदीपवत् ।	२८
१३.	तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ।	३०
द्वितीयः समुद्देशः		**४२-१३२**
१.	तद् द्वेधा ।	४२
२.	प्रत्यक्षेतरभेदात् ।	४३
३.	विशदं प्रत्यक्षम् ।	६३
४.	प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्	६८
५.	इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम् ।	७०
६.	नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ।	७४

सूत्राङ्काः पृष्ठाङ्काः

७. तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तञ्चर-ज्ञानवच्च । ७५
८. अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत् । ७८
९. स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति । ७९
१०. कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः । ८२
११. सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् । ८३
१२. सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसम्भवात् । ८४

तृतीयः समुद्देशः १३३-२४१

१. परोक्षमितरत् । १३३
२. प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम् । ,,
३. संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः । १३५
४. स देवदत्तो यथा । ,,
५. दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम् । तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि । ,,
६. यथा स एवायं देवदत्तः । गोसदृशो गवयः । गोविलक्षणो महिषः । इदमस्माद् दूरम् । वृक्षोऽयमित्यादि । १३७
७. उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः । १३८
८. इदमस्मिन् सत्येव, भवत्यसति तु न भवत्येवेति च । ,,
९. यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च । १४०
१०. साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् । १४०
११. साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः । ,,
१२. सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः । १४६
१३. सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः । १४७
१४. पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः । ,,
१५. तर्कात्तन्निर्णयः । १४८
१६. इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् । ,,
१७. सन्दिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम् । १४९
१८. अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदितीष्टाबाधितवचनम् । १५०
१९. न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः । १५१
२०. प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव । ,,

सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः
२१. साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी ।	१५२
२२. पक्ष इति यावत् ।	,,
२३. प्रसिद्धो धर्मी ।	१५४
२४. विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ।	१५५
२५. अस्ति सर्वज्ञो नास्ति खरविषाणम् ।	१५६
२६. प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ।	१५८
२७. अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ।	१५९
२८. व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ।	१६०
२९. अन्यथा तदघटनात् ।	,,
३०. साध्याधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ।	१६१
३१. साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् ।	१६२
३२. को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ।	१६४
३३. एतद्-द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम् ।	१६५
३४. न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ।	,,
३५. तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः ।	१६६
३६. व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि स्तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्याद् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ।	१६७
३७. नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः ।	,,
३८. तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति ।	१६८
३९. कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ।	१६९
४०. न च ते तदङ्गे, साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात् ।	,,
४१. समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वाऽस्तु, साध्ये तदुपयोगात् ।	१७०
४२. बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्र एवासौ, न वादेऽनुपयोगात् ।	,,
४३. दृष्टान्तो द्वेधा—अन्वयव्यतिरेकभेदात् ।	१७१
४४. साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः ।	,,
४५. साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः ।	१७२
४६. हेतोरुपसंहार उपनयः ।	,,
४७. प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् ।	१७३
४८. तदनुमानं द्वेधा ।	,,
४९ स्वार्थपरार्थभेदात् ।	१७४

सूत्राङ्काः		पृष्ठाङ्काः
५०.	स्वार्थमुक्तलक्षणम् ।	,,
५१.	परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम् ।	,,
५२.	तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ।	१७६
५३.	स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ।	१७७
५४.	उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ।	१७८
५५.	अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ।	१७६
५६.	रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमान मिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्यप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये ।	१८०
५७.	न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः ।	१८२
५८.	भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम् ।	१८४
५९.	तद्-व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ।	१८५
६०.	सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च ।	१८६
६१.	परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं स एवं दृष्टो यथा घटः, कृतकश्चायम्, तस्मात्परिणामी । यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टो यथा बन्ध्यास्तनन्धयः, कृतकश्चायम् । तस्मात्परिणामी ।	१८७
६२.	अस्त्यत्र देहिनि बुद्धिर्व्याहारादेः ।	१८८
६३.	अस्त्यत्रच्छाया छत्रात् ।	,,
६४.	उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ।	१८९
६५.	उदगाद्भरणिः प्राक्तत एव ।	१८९.
६६.	अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ।	१९०
६७.	विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा ।	,,
६८.	नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात् ।	,,
६९.	नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ।	१९१
७०.	नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ।	,,
७१.	नोदेष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ।	,,
७२.	नोदगाद्भरणिर्मुहूर्त्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ।	१९२
७३.	नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात् ।	,,
७४.	अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तर-सहचरानुपलम्भभेदात् ।	,,
७५.	नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः ।	१९३

सूत्राङ्काः	पृष्ठाङ्काः
७६. नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ।	१९४
७७. नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धेः ।	,,
७८. नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ।	,,
७९. न भविष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः ।	१९५
८०. नोदगाद्भरणिर्मुहूर्त्तात्प्राक् तत एव ।	,,
८१. नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ।	,,
८२. विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ त्रेधा—विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ।	१९६
८३. यथाऽस्मिन् प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः	,,
८४. अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ।	,,
८५. अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः ।	१९७
८६. परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ।	१९८
८७. अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ।	,,
८८. कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ।	१९९
८९. नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा ।	,,
९०. व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथनुपपत्त्यैव वा ।	२००
९१. अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ।	,,
९२. हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते ।	२०१
९३. तावता च साध्यसिद्धिः ।	,,
९४. तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ।	२०२
९५. आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ।	२०३
९६. सहजयोग्यतासङ्केतवशाद्धि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ।	२३२
९७. यथा मेर्वादयः सन्ति	२३३
चतुर्थः समुद्देशः	**२४२-२६६**
१. सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ।	२४२
२. अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ।	२८६
३. सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात् ।	२८८

सूत्राङ्काः पृष्ठाङ्काः
४. सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्। २८८
५. परापरविवर्तव्यापि द्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु। २८९
६. विशेषश्च। ,,
७. पर्यायव्यतिरेकभेदात्। २९०
८. एकस्मिन् द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् ,,
९. अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्। २९८
पञ्चमः समुद्देशः ३००-३०२
१. अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। ३००
२. प्रमाणादभिन्न भिन्नं च। ३०१
३. यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः। ,,
षष्ठः समुद्देशः ३०३-३५३
१. ततोन्यत्तदाभासम्। ३०३
२. अस्वसंविदितगृहीतार्थसंशयादयः प्रमाणाभासाः। ,,
३. स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात्। ३१०
४. पुरुषान्तर पूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत्। ,,
५. चक्षूरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च। ३११
६. अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्माद्धूमदर्शनाद्वह्निविज्ञानवत्। ३१४
७. वैशद्ये परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत्। ,,
८. अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते स देवदत्तो यथा। ३१५
९. सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम्। ,,
१०. असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासं यावांस्तत्पुत्रः स श्यामो यथा। ३१६
११. इदमनुमानाभासम्। ,,
१२. तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः। ,,
१३. अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः। ३१७
१४. सिद्धः श्रावणः शब्दः ,,
१५. बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः। ,,
१६. अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वाज्जलवत्। ,,

सूत्राङ्काः पृष्ठाङ्काः
४. सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्। २८८
५. परापरविवर्तव्यापि द्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु। २८६
६. विशेषश्च। ,,
७. पर्यायव्यतिरेकभेदात्। २६०
८. एकस्मिन् द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् ,,
६. अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्। २६८
पञ्चमः समुद्देशः ३००-३०२
१. अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। ३००
२. प्रमाणादभिन्न भिन्नं च। ३०१
३. यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः। ,,
षष्ठः समुद्देशः ३०३-३५३
१. ततोन्यत्तदाभासम्। ३०३
२. अस्वसंविदितगृहीतार्थसंशयादयः प्रमाणाभासाः। ,,
३. स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात्। ३१०
४. पुरुषान्तर पूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत्। ,,
५. चक्षूरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च। ३११
६. अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्माद्धूमदर्शनाद्वह्निविज्ञानवत्। ३१४
७. वैशद्ये परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत्। ,,
८. अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते स देवदत्तो यथा। ३१५
९. सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम्। ,,
१०. असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासं यावांस्तत्पुत्रः स श्यामो यथा। ३१६
११. इदमनुमानाभासम्। ,,
१२. तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः। ,,
१३. अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः। ३१७
१४. सिद्धः श्रावणः शब्दः ,,
१५. बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः। ,,
१६. अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वाज्जलवत्। ,,

सूत्राङ्काः		पृष्ठाङ्काः
१७.	अपरिणामी शब्दः कृतकत्वाद् घटवत् ।	३१८
१८.	प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत् ।	,,
१९.	शुचिनरशिरःकपालं प्राण्यङ्गत्वाच्छङ्खशुक्तिवत् ।	,,
२०	माता मे वन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात्प्रसिद्धवन्ध्यावत्	३१९
२१.	हेत्वाभासा असिद्धाविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः ।	,,
२२.	असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः ।	,,
२३.	अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ।	३२०
२४.	स्वरूपेणासत्त्वात् ।	,,
२५.	अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्र धूमात् ।	,,
२६.	तस्य बाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात् ।	३२१
२७.	सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात् ।	,,
२८.	तेनाज्ञातत्वात् ।	,,
२९.	विपरीतनिश्चितविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दःकृतकत्वात् ।	३२२
३०.	विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ।	३२३
३१.	निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत् ।	,,
३२.	आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात् ।	३२४
३३.	शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात् ।	,,
३४.	सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात् ।	,,
३५.	सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः ।	३२५
३६.	सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात् ।	,,
३७.	किञ्चिदकरणात् ।	,,
३८.	यथानुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ।	३२६
३९.	लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ।	,,
४०.	दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाधनोभयाः ।	३२३
४१.	अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्त्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत् ।	३२७
४२.	विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ।	३२८
४३.	विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गात्	,,
४४.	व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत् ।	,,
४५.	विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्त्तं तन्नापौरुषेयम् ।	३२९
४६.	बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता ।	३३०
४७.	अग्निमानयंदेशो धूमवत्त्वात्, यदित्थंतदित्थं यथा महानस इति	३३०
४८.	धूमवांश्चायमिति वा ।	३३१

सूत्राङ्काः		पृष्ठाङ्काः
४६.	तस्मादग्निमान् धूमवांश्चायमिति ।	३३१
५०.	स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ।	,,
५१	रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम् ।	३३२
५२.	यथानद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति धावध्वं माणवकाः ।	,,
५३.	अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्त इति च ।	,,
५४.	विसंवादात् ।	३३३
५५.	प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ।	,,
५६.	लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्चा-सिद्धेरतद्विषयत्वात् ।	,,
५७.	सौगत-सांख्य-यौग-प्राभाकरजैमिनीयायां प्रत्यक्षानुमानागमोप-मानार्थापत्त्यभावैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिवत् ।	३३४
५८.	अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ।	३३५
५९.	तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्याव्यवथा-पकत्वात् ।	,,
६०.	प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात् ।	३३६
६१.	विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम्	,,
६२.	तथाऽप्रतिभासनात्कार्याकरणाच्च ।	३३७
६३.	समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ।	,,
६४.	परापेक्षणे परिणामत्वमन्यथा तदभावात् ।	३३८
६५.	स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात्पूर्ववत् ।	,,
६६.	फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ।	३३९
६७.	अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः	,,
६८.	व्यावृत्त्याऽपि न तत्कल्पना फलान्तराद् व्यावृत्त्याऽफलत्व-प्रसङ्गात् ।	,,
६९.	प्रमाणाद् व्यावृत्त्येवाप्रमाणत्वस्य ।	३४०
७०.	तस्माद्वास्तवो भेदः ।	३४१
७१.	भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः ।	,,
७२.	समवायेऽतिप्रसङ्गः ।	३४२
७३.	प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च ।	३४३
७४.	सम्भवदन्यद्विचारणीयम् ।	३४४

परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः ।
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद् व्यधाम् ॥ २ ॥

Parikcha Mukh by Manikya Nandi
(Original Text with Hindi and Bangla translation)

Parikcha Mukh: Sanatan Jain Granth Mala, 1916

नमोऽनेकांताय ।

सनातनजैनग्रंथमाला ।

११

आचार्यवर्यश्रीमाणिक्यनंदिविरचितं

परीक्षामुखं

हिंदीवंगानुवादसहितं

मंगलाचरणं ।

प्रमाणादर्थसंसिद्धस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥

हिंदी अनुवाद—प्रमाणसे पदार्थोंका वास्तविक ज्ञान होता है, प्रमाणाभाससे वास्तविकज्ञान नहिं होता; अतएव न्यायशास्त्रसे अनभिज्ञ शिष्योंके हितार्थ इन दोनोंका (प्रमाण और प्रमाणाभासका) संक्षिप्त लक्षण जो कि पूर्वाचार्योंद्वारा प्रसिद्ध है कहा जायगा ॥

वंगानुवाद—प्रमाणद्वारा पदार्थ[redacted] हय. प्रमाणाभासद्वारा पदार्थेर वास्तविकज्ञान हय ना; अतएव [redacted] ज्ञानभिज्ञ शिष्यगणेर हितार्थे उभयेरइ आर्षग्रंथ-प्रसिद्ध-लक्षण संक्षेप करिया बलितेछि ॥ १ ॥

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणं ॥१॥

हिंदी—अपना और अपूर्व (जो पूर्वमें किसी भी प्रमाणसे निश्चित न हो ऐसे) पदार्थका निश्चय करानेवाला ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) प्रमाण है ॥ १ ॥

बंगला—स्वीय एवं अपूर्वपदार्थेर (याहा पूर्वे कोनओ प्रमाणद्वारा सिद्ध हय नाइ) निश्चयबोधक ज्ञानके (सम्यग्ज्ञानके) प्रमाण बले ॥ १ ॥

हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं, ततो ज्ञानमेव तत्।२।

हिंदी—प्रमाण ही हितकी प्राप्ति और अहितके परिहार करनेमें समर्थ है, इसलिये ज्ञान ही प्रमाण हो सकता है। अज्ञानस्वरूप सन्निकर्षादि प्रमाण नहिं होते ॥ २ ॥

बंगला—प्रमाणइ हितेर प्राप्ति ओ अहितेर परिहार करिते समर्थ, अतएव ज्ञानइ प्रमाण हइते पारे, अज्ञानस्वरूप सन्निकर्षादि प्रमाण हइते पारे ना ॥ २ ॥

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ॥३॥

हिंदी—वह प्रमाण (सम्यग्ज्ञान) समारोपका (संशय विपर्यय अनध्यवसायका) विरोधी होनेसे बौद्धोंद्वारा मानेहुये अनुमानकी तरह निश्चयात्मक है ॥ ३ ॥

बंगला—उक्त प्रणाण समारोपेर (संशय, [illegible] अनध्यवसायेर) विरोधी । [illegible] अनुमानसदृश निश्चयकारक ॥ [illegible]

[illegible] नक कोटिर अवलंबनकारक ज्ञानके संशय बले यथा— 'एइ सीप [illegible] रूपा'। विपरीत ज्ञानके विपर्यय बले यथा-सीपके रूपा बला। रास्ताय चलिबार समय तृणप्रभृतिर स्पर्शादि हइले 'किछु आछे' एइप्रकार ज्ञानके अनध्यवसाय बला हय।

अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ॥४॥ दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक् ॥५॥

हिंदी—जो पदार्थ पूर्वमें किसी भी प्रमाणद्वारा निश्चित न हुआ हो, उसे अपूर्वार्थ (अनिश्चित पदार्थ) कहते हैं। तथा किसी भी प्रमाणसे निर्णीत होनेके पश्चात् पुनः उसमें संशय, विपर्यय अथवा अनध्यवसाय हो जाय तौ उसे भी अपूर्वार्थ समझना ॥ ४—५ ॥

बंगला—पूर्वे कोनओ प्रमाणद्वारा याहा (जे पदार्थ) निश्चित करा हय नाइ ताहाके अपूर्वार्थ बले। एवं कोनओ प्रमाणद्वारा निर्णीत हओयार पश्चात् पुनराय यदि संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय हय तबे ताहाकेओ 'अपूर्वार्थ' बला जाय ॥ ४—५ ॥

स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥६॥
अर्थस्येव तदुन्मुखतया ॥ ७ ॥

हिंदी—जिसप्रकार पदार्थकी ओर झुकनेपर पदार्थका ज्ञान होता है उसीप्रकार ज्ञान जिससमय अपनी ओर झुकता है तो उसे अपना भी ज्ञान (प्रतिभास) होता है। इसीको स्वव्यवसाय अर्थात् ज्ञानका ज्ञान होना कहते हैं ॥ ६—७ ॥

बं[illegible]—ये रूप पदार्थेर सम्मुखीन हइले पदार्थेर ज्ञान हय सेइ प्रकार [illegible] अभिमुख हय तखन निजेरओ प्रतिभास (ज्ञान) हय। इ[illegible] [illegible]ज्ञान (ज्ञानेर ज्ञान हओया) बला जाय ॥ ६—७ ॥

घटमहमात्मना वेद्मि ॥८॥ कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ॥९॥

हिंदी—मैं अपनेद्वारा घटको जानता हूं इस प्रतीतिमें कर्म-

की तरह कर्त्ता करण क्रियाकी भी प्रतीति होती है। अर्थात्—'मैं अपनेद्वारा घटको जानता हूं। इस प्रतीतिमें जैसा कर्म (घट) ज्ञानका विषय मालूम पडता है उसीप्रकार (मैं) कर्त्ता (अपनेद्वारा) करण (जानता हूं) क्रिया, ये भी ज्ञानके विषय होते हैं ॥ ८–९ ॥

बंगला—आमि स्वीय ज्ञानेरद्वारा घटके जानि, एइ वाक्ये ये रूप घटेर ज्ञान हय, सेइरूप कर्त्ता, करण एवं क्रियार-ओ प्रतीति (ज्ञानेर विषय) हय ॥ ८–९ ॥

शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ॥१०॥

हिंदी–जिसप्रकार घटपटादि शब्दोंका उच्चारण न करनेपर भी घटपटादि पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है, उसीप्रकार 'ज्ञान' ऐसा शब्द न कहनेपर भी ज्ञानका ज्ञान हो जाता है ॥ १० ॥

बंगला— शब्देर उच्चारण ना करिलेओ घटपटप्रभृति पदार्थेर येमन ज्ञान हइते पारे, सेइरूप 'ज्ञान' एइ शब्देर उच्चारण ना करिलेओ ज्ञानेर ज्ञान हइया जाय ॥ १० ॥

को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव तथा नेच्छेत् ॥ ११ ॥ प्रदीपवत् ॥ १२ ॥

हिंदी–घट पट आदि पदार्थ और अपना प्रकाशक होनेसे जैसा दीपक स्वपरप्रकाशक समझा जाता है, उसीप्रकार ज्ञान भी घट पट आदि पदार्थोंका और अपना जाननेवाला है, इसलिये उसे भी स्वपरस्वरूपका जाननेवाला समझना चाहिये क्योंकि ऐसा कौनं लौकिक वा परीक्षक है जो ज्ञानसे जाने पदार्थको तो प्रत्यक्षका विषय माने और ज्ञानको प्रत्यक्षका विषय न माने ॥ ११–१२ ॥

बंगला—घटपट प्रभृति पदार्थके एवं निजेके प्रकाश कराते दीपक येमन स्वपरप्रकाशक, सेरूप ज्ञानओ घटपट प्रभृति पदार्थेर एवं निजेर ज्ञापक बलिया ताहाकेओ स्वपर बोधक स्वीकार करिते हइबे। कारण एमन के लौकिक (अप्राप्त-ज्ञानप्रकर्ष) एवं परीक्षक (प्राप्तज्ञानप्रकर्ष) आछेन यिनि ज्ञानद्वारा प्रकाशित पदार्थके प्रत्यक्ष ज्ञानेर विषय स्वीकार करेन किंतु सेइ ज्ञानके प्रत्यक्ष ज्ञानेर विषय स्वीकार ना करेन ॥ ११-१२ ॥

तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ १३ ॥

हिंदी–उपर्युक्त प्रमाणकी प्रमाणता (सच्चावट) अभ्यास दशामें अपने गामके निकट देखे भाले नदी कूपादि पदार्थोंमें) अपने आप सिद्ध हो जाती है और अनभ्यास दशामें (अपरिचितपदा-र्थोंके निर्णयमें) किसी अन्य पुरुषादिसे सिद्ध होती है ॥ १३ ॥

बंगला—पूर्वोक्त प्रमाणेर प्रामाण्य अभ्यासदशाय स्वतः (काहारओ साहाय्यभिन्न) एवं अनभ्यासदशाय परतः (अपरेर साहाय्ये) हइया थाके ॥ १३ ॥

इति परीक्षामुखसूत्रार्थे प्रथमोद्देशः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोद्देशः।

तद्द्वेधा ॥१॥ प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥२॥ विशदं प्रत्यक्षं ॥३॥

हिंदी— वह प्रमाण प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो प्रकारका है। विशद (स्पष्ट) ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं ॥ १–२–३ ॥

बंगला—प्रमाण प्रत्यक्ष ओ परोक्षभेदे दुइ प्रकार। विशद (स्पष्ट) ज्ञानके प्रत्यक्ष बला हय ॥ १–२–३ ॥

प्रतीत्यंतराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यं॥४

हिंदी—जो प्रतिभास विना किसी दूसरे ज्ञानकी सहायताके 'स्वतंत्र' हो, तथा हरा पीला आदि विशेष वर्ण और सीधा टेढा आदि विशेष आकार लिये हो, उसे वैशद्य (स्वच्छता) कहते हैं ॥४॥

बंगला—जे प्रतिभास अपर कोनओ ज्ञानेर साहाय्यभिन्न हय, एवं हरितपीतादि वर्ण ओ सरलवक्रादि विशेष आकार विशिष्ट हय, ताहाके वैशद्य (स्पष्टता, स्वच्छता) बले ॥४॥

इंद्रियानिंद्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकं ॥५॥

हिंदी—जो ज्ञान स्पर्शन रसना घ्राणादि इंद्रिय और मनकी सहायतासे एकदेश विशद हो, उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं ॥५॥

बंगला—ये स्पर्शन रसना घ्राण प्रभृति इंद्रिय ओ मनेर साहाय्ये एकदेशविशद हय ताहाके सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष बले ॥५॥

नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ॥६॥

हिंदी—ज्ञेय होनेके कारण जिसप्रकार अंधकारको ज्ञानके प्रति कारण नहिं माना जाता, उसीप्रकार ज्ञेय होनेसे पदार्थ और प्रकाश भी ज्ञानके कारण नहिं हो सकते। इसमें और भी समाधान देते हैं, ॥६॥

बंगला—ज्ञेय बलिया येरूप अंधकारके ज्ञानेर कारण बलिया स्वीकार करा जाय ना, सेरूप ज्ञेय बलिया पदार्थ एवं प्रकाशओ ज्ञानेर कारण हइते पारे ना। एविषये आरओ समाधान करिते छेन ॥ ६ ॥

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोंडुकज्ञानवन्मक्षिकाज्ञानवच्च ॥७॥

हिंदी—मच्छर न होनेपर भी केशोंमें मच्छरोंका ज्ञान हो जाता है किंतु यहांपर ज्ञानका मच्छरोंके साथ अन्वय व्यतिरेक न रहनेसे (अन्वयव्यतिरेकव्यभिचारसे) जिसप्रकार मच्छर ज्ञानके प्रति कारण नहिं होते और कृष्ण पक्षकी रात्रिमें प्रकाश न होनेपर भी बिल्ली, उल्लू आदि जीवोंको पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। यहांपर ज्ञानका प्रकाशके साथ अन्वय व्यतिरेक न रहनेसे (अन्वयव्यतिरेकके व्यभिचारसे) प्रकाश ज्ञानका कारण नहिं होता, उसीप्रकार पदार्थ और प्रकाश कदापि ज्ञानके कारण नहिं हो सकते ॥७॥

बंगला—येमन मशक केश ना हइलेओ केश मशकेर ज्ञान हइते पारे किंतु ए स्थले केश मशकेर संगे ज्ञानेर अन्वयव्यतिरेक ना हओयाते येरूप केश मशक ज्ञानेर कारण एवं कृष्ण पक्षेर रात्रिते प्रकाश हइलेओ विडाल उलूक प्रभृतिर पदार्थज्ञान हय किंतु एखाने प्रकाशेर संगे ज्ञानेर अन्वयव्यतिरेक ना हओयाते पदार्थ ओ प्रकाश ज्ञानेर कारण कदापि हइते पारे ना ॥७॥

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत् ॥८॥

हिंदी—पदार्थोंसे नहिं उत्पन्न होकर भी प्रदीप जिसप्रकार घटपटादि पदार्थोंका प्रकाशक है, उसीप्रकार पदार्थोंसे उत्पन्न न होकर भी ज्ञान उन पदार्थोंका प्रकाश करनेवाला है ॥८॥

बंगला—पदार्थ हइते उत्पन्न ना हइयाओ येरूप प्रदीप घटपट प्रभृति पदार्थेर प्रकाशक, सेरूप घटपटादि पदार्थ हइते उत्पन्न ना हइया ज्ञानओ से सकल पदार्थ समूहेर प्रकाशक ॥८॥

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति ॥ ९ ॥

हिंदी—जाननेरूप अपनी शक्तीको ढकनेवाले कर्मकी क्षयोपशमरूप अपनी योग्यतासे ही ज्ञान घटपटादि पदार्थोंकी जुदी २ रीतिसे व्यवस्था कर देता (जनादेता) है, इसलिये पदार्थोंसे ज्ञान उत्पन्न होता है और इसीलिये वह उनका प्रकाशक है; इस सिद्धांतके माननेकी कोई आवश्यकता नहीं ॥९॥

बंगला—स्वीय ज्ञायक शक्तिके आच्छादक कर्मेर क्षयोपशमरूप स्वीय योग्यताद्वाराइ ज्ञान घटपटादि पदार्थ समूहके भिन्नभिन्नभावे व्यवस्था करिया थाके अर्थात् निश्चय करिया थाके। अतएव पदार्थसमूह हइते ज्ञान उत्पन्न हय, एवं सेइजन्येइ ताहादेर प्रकाशक, एरूप स्वीकार करिबार कोनओ आवश्यकता हय ना ॥९॥

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः ॥१०॥

हिंदी—जो पदार्थ ज्ञानका कारण होता है नियमसे वही पदार्थ ज्ञानका विषय होता है' यदि ऐसा कहोगे तो इंद्रिय और मन आदिमें व्यभिचार आवैगा क्योंकि इंद्रियादिक पदार्थोंका ज्ञान तो कराते हैं किंतु स्वयं अपना ज्ञान नहिं कराते ॥१०॥

१ जैनदर्शनमें जीवकी शक्तियोंको ढकनेवाले वा हानिपहुंचानेवाले आठ प्रकारके कर्म हैं। उनमेंसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय अंतराय ये चारकर्म आत्माकी अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, (सामान्यावलोकनरूप ज्ञान) सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र, अनंतवीर्य आदि शक्तियोंको आच्छादन करनेवाले घातियाकर्म हैं। इनकर्मोंका यथासमय उदय तथा क्षय वा उपशम होता रहता है। ज्ञानावरणीय कर्मके उदय होनेसे ज्ञान ढक जाता (कम हो जाता) है। व क्षयोपशम होनेसे ज्ञान बढता रहता है।

बंगला—ये पदार्थ ज्ञानेर कारण। नियमतः सेइ पदार्थइ ज्ञानेर विषय, यदि एइरूप बलेन ताहा हइले इंद्रिय मन प्रभृति ज्ञानकारणे व्यभिचार उपस्थित हइबे। ये हेतु इंद्रिय प्रभृति पदार्थ समूहेर ज्ञान तो कराय बटे किंतु स्वयं निजेर ज्ञान कराय ना।१०।

सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतींद्रियमशेषतो मुख्यं ॥११॥ सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबंधसंभवात् ॥१२॥

हिंदी—जो ज्ञान, देश काल तप आदि सामग्री विशेषसे समस्त कर्मावरणोंसे रहित हो, अतींद्रिय और सर्वथा विशद (निर्मल) हो, उसे मुख्यप्रत्यक्ष कहते हैं। क्योंकि आवरण सहित और इंद्रियोंकी सहायतासे होनेवाले ज्ञानका प्रतिबंध होना संभव है ॥११-१२॥

बंगला—ये ज्ञान देश काल तपः प्रभृति सामग्रीविशेषद्वारा कर्मावरणरहित, अतींद्रिय एवं सर्वथा विशद (स्वच्छ) ताहाके मुख्य प्रत्यक्ष बले। ये हेतु आवरण सहित ओ इंद्रिय सहाय्ये उत्पन्न ज्ञानेर प्रतिबंध हइबार संभावना थाके ॥११२॥

इति परीक्षामुखसूत्रार्थे द्वितीयोदेशः ॥२॥

अथ तृतीयोदेशः ।

परोक्षमितरत् ॥ १ ॥

हिंदी—प्रत्यक्ष ज्ञानसे भिन्न स्मृति आदिक ज्ञान परोक्षप्रमाण हैं ॥ १ ॥

बंगला—प्रत्यक्ष ज्ञान हइते भिन्न स्मृति प्रभृतिके परोक्ष प्रमाण बला हय ॥ १ ॥

प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदं ॥२॥

हिंदी—वह परोक्षज्ञान प्रत्यक्ष व स्मृति आदिकी सहायतासे होता है और उसके स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये पांच भेद हैं ॥ २ ॥

बंगला—परोक्षज्ञान प्रत्यक्ष ओ स्मृति प्रभृतिर साहाय्ये हइया थाके। एवं ताहा स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान एवं आगम एइ पांच भेदे विभक्त ॥ २ ॥

संस्कारोद्बोधनिबंधना तदित्याकारा स्मृतिः ॥ ३ ॥

स देवदत्तो यथा ॥ ४ ॥

हिंदी—पूर्वसंस्कारकी प्रकटतासे 'वह देवदत्त' इस प्रकारके स्मरणको स्मृतिज्ञान कहते हैं ॥ ३-४ ॥

बंगला—पूर्व संस्कारेर उद्भूति हइते 'से देवदत्त' एरूप स्मरणके स्मृतिज्ञान बले ॥ ३-४ ॥

दर्शनस्मरणकारणकं संकलनं प्रत्यभिज्ञानं तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि ॥५॥ यथा स एवायं देवदत्तः ॥ ६ ॥ गोसदृशो गवयः ॥ ७ ॥ गोविलक्षणो महिषः ॥ ८ ॥ इदमस्माद्दूरं ॥ ९ ॥ वृक्षोयमित्यादि ॥ १० ॥

हिंदी—प्रत्यभिज्ञान नामका परोक्षज्ञान प्रत्यक्ष और स्मरणकी सहायतासे होता है जो कि-यह वही है, यह उसके सदृश है, यह उससे विलक्षण है, यह इससे दूर है, और यह वृक्ष है इत्यादि प्रकारका होता है । जैसे-यह वही देवदत्त है । यह उस गौके सदृश है । यह भैंसा उस गौसे विलक्षण है। यह प्रदेश उस प्रदेशसे दूर है, यह वृक्ष है 'जो हमने सुना था' इत्यादि अनेकप्रकार प्रत्यभिज्ञान होता है ॥ ५-१० ॥

बंगला—प्रत्यभिज्ञान नामक परोक्षज्ञान प्रत्यक्ष ओ स्मृतिर साहाय्ये हय एवं इहा सेई, इहा ताहार सदृश, इहा ताहा हइते विलक्षण, इहा ताहा हइते दूर, इहा वृक्ष इत्यादि नाना प्रकार हइया थाके । यथा-इनि सेइ देवदत्त । ए सेइ गोसदृश । एइ महिष गरु हइते विलक्षण । एइ प्रदेश से प्रदेश हइते दूर । ए 'सेइ' वृक्ष याहा आमि सुनिया छिलाम इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यभिज्ञान हइया थाके ॥ ५-६-७-८-९-१० ॥

उपलंभानुपलंभनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः ॥ ११ ॥

इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति न भवत्येवेति च॥ १२ ॥

यथाग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ॥ १३ ॥

हिंदी—उपलब्धि[१] और अनुपलब्धि[२]की सहायतासे होनेवाले व्याप्तिज्ञानको तर्क कहते हैं और उसका स्वरूप-इसके होते ही यह होता है इसके न होते होता ही नहीं, जैसे-अग्निके होते ही धूआं होता है अग्निके न होते होता ही नहीं ॥ ११-१२-१३ ॥

बंगला—उपलब्धि ओ अनुपलब्धिर सहायता द्वारा उद्भूत व्याप्तिज्ञानके तर्क बले । अर्थात्-इहा हइलेइ ए हय, इहा ना हइले हइते पारे ना । यथा-अग्निर अस्तित्व हइलेइ धूम्र हय, अग्नि ना हइले कखनओ हय ना ॥ ११-१२-१३ ॥

साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानं ॥ १४ ॥

---

१ अन्वय २ व्यतिरेक

हिंदी—साधनसे (हेतुसे) साध्यके विशेषज्ञान होनेके अनुमान कहते हैं ॥ १४ ॥

बंगला—साधन हइते [हेतु हइते] साध्येर विशेषज्ञान होओयाके अनुमान बले ॥ १४ ॥

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥ १५ ॥

हिंदी—जो साध्यके साथ अविनाभावीपनेसे निश्चित हो अर्थात् साध्यके विना हो ही न सके, वह हेतु है ॥ १५ ॥

बंगला—ये साध्येर संगे अविनाभावी रूपे निश्चित अर्थात् साध्यभिन्न हइते पारे ना ताहाके हेतु बले ॥ १५ ॥

सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ॥ १६ ॥

हिंदी—सहभाव नियम और क्रमभावनियमको अविनाभाव (व्याप्ति) कहते हैं ॥ १६ ॥

बंगला—सहभावनियम ओ क्रमभावनियमके अविनाभाव [व्याप्ति] बले ॥ १६ ॥

सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकभावयोश्च सहभावः ॥१७

हिंदी—साथ रहनेवाले पदार्थोंमें, तथा आपसमें व्याप्यव्यापक पदार्थोंमें, सहभाव नामका अविनाभाव संबंध होता है। रूपरस साथ रहनेवाले हैं, और वृक्षत्व व्यापक और शिंशपात्व उसका व्याप्य है ॥ १७ ॥

बंगला—सहचारी पदार्थे एवं परस्पर व्याप्यव्यापक पदार्थे सहभाव नामक अविनभावसंबंध हय। रूप ओ रस सहचारी एवं वृक्षत्व व्यापक एवं शिंशपात्व ताहार व्याप्य ॥ १७ ॥

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः ॥१८॥

तर्कात्तन्निर्णयः ॥ १९ ॥

हिंदी—पूर्वचर और उत्तरचर पदार्थोंमें तथा कार्यकारणोंमें क्रमभाव नियम होता है। अर्थात् कृतिकाका उदय पहिले होता है उसके बाद ही रोहिणी नक्षत्रका उदय होता है तथा अग्निके बाद धूआं होता है इत्यादिको क्रमभाव कहते हैं और तर्कसे इसका निर्णय होता है ॥ १८-१९ ॥

बंगला—पूर्वचर ओ उत्तरचर पदार्थे एवं कार्य ओ कारणे क्रमभावनियम हय अर्थात्-कृतिका नक्षत्रेर उदय पूर्वे हय, ताहार पश्चात् रोहिणी नक्षत्रेर उदय हइया थाके। एवं अग्निर पश्चात्इ धूम्र हय इत्यादिके क्रमभाव बले। अथच तर्कद्वाराइ इहार निर्णय हइया थाके ॥ १८-१९ ॥

इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यं ॥ २० ॥

हिंदी—जो वादीको इष्ट हो प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे बाधित और सिद्ध न हो, उसे साध्य कहते हैं ॥ २० ॥

बंगला—जे वादीर इष्ट [अभिप्रेत] प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा बाधित एवं सिद्ध ना हय ताहाकेइ साध्य बले ॥२०॥

संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदं ॥ २१ ॥ अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं माभूदितीष्टाबाधितवचनं ॥ २२ ॥ न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥ २३ ॥ प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ २४ ॥

हिंदी—संदिग्ध, विपर्यस्त और अव्युत्पन्न पदार्थ ही साध्य हों इसलिये ऊपरके सूत्रमें असिद्धपद दिया गया है और-वादी का अनिष्ट पदार्थ साध्य नहिं होता इसलिये साध्यको इष्ट

विशेषण लगाया गया है तथा प्रत्यक्षादि किसी भी प्रमाणसे बाधित पदार्थ भी साध्य नहिं होते, इसलिये अबाधित विशेषण दिया गया है। इनमेंसे असिद्धविशेषण प्रधानतासे तौ प्रतिवादीकी अपेक्षासे है और इष्टविशेषण वादीकी अपेक्षा है क्योंकि दूसरेको समझानेकी इच्छा वादीकी ही होती है ॥२१-२२-२३-२४ ॥

बंगला—संदिग्ध, विपर्यस्त एवं अव्युत्पन्न पदार्थइ साध्य हओया उचित, अन्य पदार्थ साध्य हय ना बलियाइ उपर्युक्त सूत्रे असिद्धपद ग्रहण करा हइया छे । एवं वादीर अनिष्ट [अनाभिमत] पदार्थ साध्य हय ना बलिया साध्यके इष्ट विशेषण प्रदत्त हइया छे । एवं प्रत्यक्षादि कोनओ प्रमाणद्वारा बाधित पदार्थओ साध्य हइते पारे ना बलिया अबाधितपद विशेषण रूपे प्रदत्त हइया छे । इहाते प्रतिवादीर अपेक्षा असिद्ध विशेषण, वादीर अपेक्षा इष्ट विशेषण प्रदत्त हइया छे । केननना अपरके बुझाइबार इच्छा वादीरइ हइया थाके ॥ २१-२४ ॥

साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी ॥ २५ ॥ पक्ष इति यावत् ॥२६॥ प्रसिद्धो धर्मी ॥२७॥

हिंदी—कहीं तौ (व्याप्तिकालमें) धर्म साध्य होता है और कहीं धर्म विशिष्ट धर्मी साध्य होता है धर्मीको पक्ष भी कहते हैं। धर्मी प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे प्रसिद्ध होता है ॥२५-२६-२७

बंगला—कोनओ स्थाने [व्याप्तिकाले] धर्म साध्य हय एवं कोनओ स्थाने धर्मविशिष्ट धर्मी साध्य हइया थाके । धर्मीके पक्षओ बला हय । धर्मी प्रत्यक्षादि प्रमाणद्वारा प्रसिद्ध ॥ २५-२६-२७ ॥

विकल्पसिद्धे तस्मिन्सत्तेतरे साध्ये ॥ २८ ॥
अस्ति सर्वज्ञो नास्ति खरविषाणं ॥ २९ ॥

हिंदी—विकल्पसिद्ध धर्मीमें अस्तित्व एवं नास्तित्व साध्य रहते हैं । जैसें—सर्वज्ञ है और गधेके सींग नहीं है इत्यादि ॥ २८-२९ ॥

बंगला—विकल्प सिद्ध धर्मीते अस्तित्व नास्तित्व साध्य हइया थाके । यथा सर्वज्ञ आछे, गाधार सींग थाके ना इत्यादि ॥ २८-२९ ॥

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ॥ ३० ॥
अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ॥३१॥
व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ॥ ३२ ॥ अन्यथा तदघटनात् ॥ ३३ ॥

हिंदी—प्रमाणसिद्धधर्मी और उभयसिद्धधर्मीमें साध्यरूप धर्मविशिष्ट धर्मी साध्य होता है । जैसें—यह देश अग्निवाला है यह प्रमाणसिद्ध धर्मीका उदाहरण है क्योंकि यहां देश, प्रत्यक्षप्रमाणसे सिद्ध है और शब्द परिणमन स्वभाववाला है यह उभयसिद्ध धर्मीका उदाहरण है क्योंकि यहांपर शब्दरूपधर्मी उभयसिद्ध है । व्याप्तिमें धर्म ही साध्य होता है यदि व्याप्तिकालमें धर्मको छोड धर्मी साध्य माना जायगा तो व्याप्ति नहिं बन सकैगी ॥ ३०-३१-३२-३३ ॥

बंगला—प्रमाणसिद्ध धर्मी ओ उभयसिद्ध धर्मीते साध्य विशिष्ट धर्मीइ साध्य हइया थाके । यथा-ए देश अग्निविशिष्ट । एटी प्रमाणसिद्धधर्मीर उदाहरण । ये हेतु एइ देश प्रत्यक्ष-

प्रमाणद्वारा सिद्ध हइया छे । ' शब्द, परिणमन स्वभावी ' एटि उभयसिद्धधर्मीरि उदाहरण । ये हेतु एखाने शब्दरूप धर्मी उभयसिद्ध । एवं व्याप्तिकाले केवल धर्मइ साध्य हइया थाके । ये हेतु व्याप्तिकाले धर्म भिन्न धर्मीके साध्य स्वीकार करिले व्याप्ति इहते पारिबे ना ॥ ३०-३१-३२-३३ ॥

साध्यधर्माधारसंदेहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनं ॥ ३४ ॥ साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् ॥ ३५ ॥ को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ॥ ३६ ॥

हिंदी—साध्य विशिष्ट पर्वतादि धर्मीमें हेतुरूप धर्मको समझानेकेलिये जैसा उपनयका प्रयोग किया जाता है, उसीप्रकार साध्य (धर्म) के आधारमें संदेह दूर करनेकेलिये प्रत्यक्षसिद्ध होनेपर भी पक्षका प्रयोग किया जाता है क्योंकि ऐसा कौन वादी प्रतिवादी है जो कार्य, व्यापक अनुपलंभ भेदसे तीन प्रकारका हेतु कहकर समर्थन करताहुवा भी पक्षका प्रयोग न करै ? अर्थात् सबको पक्षका प्रयोग करना ही पडैगा ॥ ३४-३५-३६ ॥

बंगला—साध्यविशिष्ट पर्वत प्रभृति धर्मीते हेतुरूप धर्मीके बुझाइबार जन्य येरूप उपनयेर प्रयोग करा जाइते छे, सेरूप साध्येर (धर्मेर) अधिकरणे संदेहभंजन करिबारजन्य प्रतक्ष सिद्ध हइलेओ पक्षेर प्रयोग करा याइते छे । ये हेतु एरूप कोनओ वादी प्रतिवादी नाइ ये कार्य, व्यापक, अनुपलंभ भेदे तिनप्रकार हेतु उच्चारणपूर्वक समर्थन करियाओ पक्षेरे प्रयोग करे ना । अर्थात् वादी प्रतिवादी सकलकेइ पक्षेर प्रयोग अवश्य करितेइ हइबे ॥ ३४-३५-३६ ॥

एतद्द्वयमेवानुमानांगं नोदाहरणं ॥ ३७ ॥ न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यंगं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ॥ ३८ ॥

हिंदी— पक्ष और हेतु ये दो ही अनुमानके अंग हैं सांख्यमतीके कथनानुसार उदाहरण अनुमानका अंग नहीं है क्योंकि उदाहरण, साध्यके ज्ञानमें हेतु नहीं है । जिस हेतुका साध्यके साथ अविनाभावनिश्चित है वह हेतु ही साध्यके ज्ञान करानेमें पर्याप्त है ॥ ३७-३८ ॥

बंगला— पक्ष ओ हेतु ए दुइटि अनुमानेर अंग । सांख्य दर्शनकथित उदाहरण अनुमानेर अंग हइते पारे ना । ये हेतु उदाहरण साध्यज्ञाने हेतु हइते पारेना । ये हेतुर साध्येर संगे अविनाभाव निश्चित, से हेतुइ साध्येर ज्ञान कराइते समर्थ ॥ ३७-३८ ॥

तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः ॥ ३९ ॥

हिंदी—अथवा वह उदाहरण साध्यके साथ हेतुके अविनाभावके निश्चय करानेके लिये भी (कारण) नहिं हो सकता क्योंकि विपक्षमें बाधक प्रमाण मिलनेसे ही साध्यके साथ अविनाभाव सिद्ध हो जाता है ॥ ३९ ॥

बंगला—अथवा से उदाहरण साध्येर संगे हेतुर अविनाभाव निश्चय कराइबार जन्यओ कारण हइते पारे ना । कारण—विपक्षे बाधकप्रमाण होओयाते साध्येर संगे अविनाभाव सिद्ध हइया जाय ॥ ३९ ॥

व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्याद्दृष्टांतांतरापेक्षणात् ॥४०॥

हिंदी--दृष्टांत किसी विशेष व्यक्तिरूप होता है और व्याप्ति सामान्यरूपसे होती है। उस दृष्टांतमें भी यदि सामान्यरूप व्याप्तिमें [साध्य साधनके विषयमें] विवाद खडा होजाय भलेप्रकार निश्चय न हो तौ दूसरे दृष्टांतकी आवश्यकता होगी यदि उसमें भी विवाद होगा तौ तीसरे दृष्टांतकी जरूरत होगी इसप्रकार अनवस्था दोष आवेगा ॥ ४० ॥

बंगला—दृष्टांत कोनओ विशेष व्यक्तिरूप हइया थाके। एवं व्याप्ति सामान्यरूप हइया थाके। से दृष्टांतेओ यदि सामान्यरूप व्याप्तिते (साध्य साधनेर विषये) विवाद उपस्थित हय सम्यक्प्रकारे निश्चय ना हय ताहा इहले एकटि अपर दृष्टांतेर आवश्यकता हइबे। यदि ताहातेओ विवाद उपस्थित हय ताहा हइले तृतीय दृष्टांतेर आवश्यकता हइबे। एरूप हइले अनवस्था दोषेर प्राप्ति ॥ ४० ॥

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः ॥ ४१ ॥ तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने संदेहयति ॥ ४२ ॥ कुतोन्यथोपनयनिगमने ॥ ४३ ॥

हिंदी—तथा व्याप्तिके स्मरणार्थ भी दृष्टांतका प्रयोगकरना कार्यकारी नहीं क्योंकि साध्यके साथ अविनाभावीपनेसे निश्चित हेतुके प्रयोगसे ही व्याप्तिका स्मरण हो जाता है। बल्कि वह कहा हुआ दृष्टांत साध्यविशिष्ट पर्वत आदि धर्मीमें साध्य और हेतुको 'पर्वतादिधर्मियोंमें साध्य और हेतु मोजूद हैं वा नहीं' इसप्रकार संदेहयुक्त बना देता है क्योंकि दृष्टांत यदि संदेह करानेवाला न हो तौ उपनय और निगमन क्यों माने जांय ? अर्थात् उपनय और निगमनका प्रयोग, हेतु और साध्यके अस्तित्वमें संदेह निवारणकरनेकेलिये ही किया जाता है अत एव दृष्टांतको अनुमानका अंग न मानना ही ठीक है ॥ ४१-४२-४३ ॥

बंगला—एवं व्याप्तिर स्मरणार्थओ दृष्टांतेर प्रयोग करा कार्यकारक नाइ। कारण,—साध्येर संगे अविनाभावित्वेन निश्चित हेतुर प्रयोगद्वारा व्याप्तिर स्मरण हइया जाय अपितु से कथित दृष्टांत साध्यविशिष्ट पर्वतप्रभृति धर्मीर मध्ये साध्य ओ हेतुके पर्वतप्रभृति धर्मीते 'साध्य ओ हेतुर अस्तित्व आछे कि नाई' एरूप संदेहयुक्त करिया देय। केननां—दृष्टांत यदि संदेहकारक ना हइत ताहाहइले उपनय ओ निगमन केन स्वीकार करा हय ? अर्थात्—हेतु एवं साध्येर अस्तित्वे संदेहनिवारण करिबार जन्यइ उपनय ओ निगमनेर प्रयोग करा हय। अत एव दृष्टांतके अनुमानेर अंग स्वीकार करा कोनओ प्रकार उचित हय ना ॥ ४१-४२-४३ ॥

न च ते तदंगे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात् ॥ ४४ ॥

हिंदी—उपनय और निगमन भी अनुमानके अंग नहीं हैं क्योंकि साध्ययुक्त पर्वतादि धर्मीमें हेतु और साध्यके कथन करनेसे ही हेतु और साध्यके ज्ञानमें किसीप्रकार संशय नहिं होता अर्थात् हेतु और साध्यके कथन करनेसे ही हेतु और साध्यके अस्तित्वका निश्चय हो जाता है ॥ ४४ ॥

बंगला—उपनय एवं निगमनओ अनुमानेर अंग हइते पारे ना। ये हेतु साध्ययुक्त पर्वतादि धर्मीर मध्ये हेतु ओ साध्येर कथन करितेइ हेतु एवं साध्य ज्ञाने कोनओ प्रकार संशय उत्पन्न हय ना अर्थात् हेतु ओ साध्येर उल्लेख करिलेइ हेतु एवं साध्येर अस्तित्वेर निश्चय हइया जाय ॥ ४४ ॥

संमर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात् ॥ ४५ ॥

हिंदी—साध्यकी सिद्धि समर्थन वा अनुमानके अंगभूत हेतुसे ही हो सकती है क्योंकि साध्यकी सिद्धिमें समर्थन वा हेतुकी पूरी २ आवश्यकता पडती है दृष्टांतादिककी नहीं, क्योंकि उनके विना भी साध्यकी सिद्धि हो जाती है ॥ ४५ ॥

बंगला—साध्यसिद्धि समर्थन ओ अनुमानेर अंग हेतुद्वाराइ हइते पारे। ये हेतु साध्यसिद्धिर मध्ये समर्थन एवं हेतुर पूर्णतया आवश्यकता हय, दृष्टांतप्रभृतिर आवश्यकता हय ना। कारण—उहादेर ना हइलेओ साध्येर सिद्धि हइया जाय ॥४५॥

बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्र एवासौ न वादे, अनुपयोगात् ॥ ४६ ॥

हिंदी—दृष्टांत आदिके स्वरूपसे सर्वथा अनभिज्ञ बालकोंको समझानेकेलिये यद्यपि दृष्टांत आदि कहना उपयोगी है परंतु शास्त्रमें ही उनका स्वरूप समझाना चाहिये वादमें नहीं, क्योंकि वाद व्युत्पन्नोंका ही होता है ॥ ४६ ॥

१ हेतुके दोषोंको दूरकर उसकी पुष्टि करनेको समर्थन कहते हैं।

१ हेतुर दोष दूर करिया ताहार पुष्टिसाधनके समर्थन बले।

बंगला—दृष्टांत प्रभृतिर स्वरूप हइते सर्वथा अनभिज्ञ बालकेर जन्य दृष्टांतप्रभृति उपयोगी हइते पारे किंतु ताहादिगेर स्वरूप शास्त्रेइ वर्णन करिया बुझाइते हय, वादे ताहार आवश्यकता नाइ। केननना-वाद व्युत्पन्न व्यक्तिर मध्येइ हइया थाके ॥ ४६ ॥

दृष्टांतो द्वेधा अन्वयव्यतिरेकभेदात् ॥४७॥ साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोन्वयदृष्टांतः ॥४८॥ साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टांतः ॥ ४९ ॥

हिंदी—दृष्टांतके दो भेद हैं। एक अन्वयदृष्टांत दूसरा व्यतिरेकदृष्टांत। जहां हेतुकी मोजूदगीसे साध्यकी मोजूदगी बतलाई जाय उसे अन्वयदृष्टांत कहते हैं। और जहां साध्यके अभावमें साधनका अभाव कहा जाय उसे व्यतिरेकदृष्टांत कहते हैं। ॥ ४७-४८-४९ ॥

बंगला—दृष्टांत दुइ प्रकार। प्रथम अन्वयदृष्टांत द्वितीय व्यतिरेकदृष्टांत। येखाने हेतुर अस्तित्वद्वारा साध्येर अस्तित्व वर्णन करा जाय ताहाके अन्वयदृष्टांत बले। एवं येखाने साध्याभावे साधनेर अभाव बला हय, ताहाके व्यतिरेकदृष्टांत बले ॥ ४७-४८-४९ ॥

हेतोरुपसंहार उपनयः ॥ ५० ॥

हिंदी—व्याप्तिपूर्वक धर्मीमें हेतुकी निस्संशय मोजूदगी बतलाना उपनय है यथा [तथा चायं धूमवान्] वैसा ही यह भी धूआंवाला है ॥ ५० ॥

बंगला—व्याप्तिपूर्वक धर्मीते हेतुर निःसंशय अस्तित्वेर वर्णनके उपनय बले । यथा- (तथाचायं धूमवान्) सेरूप एटीओ धूमवान् ॥ ५० ॥

प्रतिज्ञायास्तु निगमनं ॥ ५१ ॥

हिंदी—धर्मीमें साध्यकी मोजूदगीका सर्वथा निश्चय करना निगमन है यथा- (तस्मादयं वह्निमान्) इसीलिये यह अग्नि-वाला है ॥ ५१ ॥

बंगला—धर्मीर मध्ये साध्यास्तित्वके सर्वथा निश्चय कराके निगमन बले । यथा (तस्मादयं वह्निमान्) एइजन्यइ ए अग्नि-मान् ॥ ५१ ॥

तदनुमानं द्वेधा ॥ ५२ ॥ स्वार्थपरार्थभेदात् ॥५३॥ स्वार्थमुक्तलक्षणं ॥ ५४ ॥ परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातं ॥ ५५ ॥

हिंदी—स्वार्थानुमान और परार्थानुमानके भेदसे अनुमान दो प्रकार है । दूसरेके विना ही कहे (अपने आप) साधनसे साध्यका ज्ञान होना स्वार्थानुमान है । तथा स्वार्थानुमानके विषयभूत हेतु और साध्यको अवलंबन करनेवाले वचनोंसे उत्पन्न हुए ज्ञानको परार्थानुमान कहते हैं ॥५२॥५३॥५४॥५५॥

बंगला—स्वास्थानुमान एवं परार्थानुमानभेदे अनुमान दुइ प्रकार। अपरेर द्वारा प्रकाश ना हइया स्वयं साधनद्वारा साध्येर ज्ञान हओयाके स्वार्थानुमान बले । एवं स्वार्थानुमानेर विषयभूत हेतु ओ साध्येर अवलंबन कारक वचनद्वारा उद्भूत ज्ञानके परार्थानुमान बला हय ॥ ५२-५३-५४-५५ ॥

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ॥५६॥

हिंदी—परार्थानुमानका प्रतिपादक वचन, ज्ञानस्वरूपपरार्थानुमानका कारण है इसलिये वह भी परार्थानुमान है मुख्यरूपसे वचन परार्थानुमान नहीं ॥ ५६ ॥

बंगला—परार्थानुमानेर प्रतिपादक वचन ज्ञानस्वरूप परार्थानुमानेर कारण । अतएव सेटिओ परार्थानुमान । मुख्यतया वचनइ परार्थानुमान नहे ॥ ५६ ॥

स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ॥ ५७ ॥ उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ॥ ५८ ॥

हिंदी—हेतुके दो भेद हैं एक उपलब्धि दूसरा अनुपलब्धि, उपलब्धिमें विधिरूप एवं प्रतिषेधरूप दोनों प्रकारके साध्य होते हैं तथा अनुपलब्धिमें भी विधिरूप और प्रतिषेधरूप दोनों प्रकारके साध्य होते हैं किंतु उपलब्धिमें विधिरूप और अनुपलब्धिमें प्रतिषेधरूप ही साध्य हो यह बात नहीं ॥५७॥५८॥ उपलब्धिके दो भेद हैं एक अविरुद्धोपलब्धि दूसरा विरुद्धोपलब्धि । इनमेंसे प्रथम अविरुद्धोपलब्धिका वर्णन करते हैं ।

बंगला—हेतु दुइप्रकार । प्रथम-उपलब्धि द्वितीय अनुपलब्धि । उपलब्धिते विधिरूप ओ प्रतिषेधरूप उभयप्रकारेर साध्य हय । एवं अनुपलब्धितेओ उभयरूप साध्य हइया थाके किंतु उपलब्धिते केवल विधिरूप ओ अनुपलब्धिते केवल प्रतिषेधरूप हय एरूप नय ॥५७-५८॥ उपलब्धि दुइ प्रकार– अविरुद्धोपलब्धि एवं विरुद्धोपलब्धि । तन्मध्ये प्रथम अविरुद्धोपलब्धिर वर्णन करिते छेन—

अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ॥ ५९ ॥

हिंदी--विधिरूप साध्य रहनेपर अविरुद्धोपलब्धिके छह भेद हैं--व्याप्योपलब्धि कार्योपलब्धि कारणोपलब्धि पूर्वचरोपलब्धि उत्तरचरोपलब्धि और सहचरोपलब्धि ॥ ५९ ॥

बंगला—विधिरूप साध्य थाकिले अविरुद्धोपलब्धि छय भेदे विभक्त। यथा व्याप्योपलब्धि, कार्योपलब्धि, कारणोपलब्धि, पूर्वचरोपलब्धि, उत्तरचरोपलब्धि, एवं सहचरोपलब्धि ॥५९॥

रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किंचित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्यप्रतिबंधकारणांतरावैकल्ये ॥ ६० ॥

हिंदी--रसका सजातीय रस, और रूपका सजातीय रूप है। तथा रसका विजातीय रूप और रूपका विजातीय रस है। एवं रूप और रस इन दोनोंका सहचरभाव है-विना रसके रूप नहिं रह सकता और विनारूपके रस नहीं, इसलिये रसकी उत्पत्तिमें जैसा प्राक्तन रस कारण पडता है वैसा रूप भी कारण पडता है तो जिससमय हम अंधेरी रात्रिमें किसी फलके रसका आस्वादन कर रहे हैं उससमय उसकी सामग्रीका अनुमान होता है अर्थात् इस रसको उत्पन्न करनेवाली कोई न कोई सामग्री (कारण) थी और उस सामग्रीके अनुमानसे रूपका अनुमान होता है अर्थात्--प्राक्तन रूप जैसे सजातीयरूपको उत्पन्न करता है वैसे ही विजातीय रसको भी उत्पन्न करता है। जब ऐसी स्थिति है तब रससे समान सामग्रीका अनुमान और समानसामग्रीके अनु-

ानसे रूपका अनुमान माननेवालेको अवश्य ही कोई कारण-लिंग भी मानना पडेगा। कहोगे कहींपर कारण रहते भी का-र्का अनुमान नहीं होता, और जहां कारणकी सामर्थ्य किसी णि मंत्र आदिसे रुक गई है वहां भी कारणसे कार्यका अनुमान नहीं होता इसलिये कारणलिंग व्यभिचारी होनेसे नहिं मानना चाहिये ? सो ठीक नहीं क्योंकि--जहां जितने कारणोंकी आव-श्यकता है वहां वे सब होंगे और जहांपर कारणकी सामर्थ्यको रोकनेवाला कोई मणि मंत्र आदि न होगा वहां नियमसे कार-णसे कार्यका अनुमान हो जायगा, वहां कारण लिंग व्यभिचारी नहीं हो सकता इसलिये बौद्ध जैसा स्वभावलिंग और कार्यलिंग मानता है उसे चाहिये वैसे ही वह युक्तिसिद्ध कारणलिंग भी स्वीकार करै ॥ ६० ॥

बंगला--रसेर सजातीय रस ओ रूपेर सजातीय रूप। एवं सेइ विजातीय रूप ओ रूपेर विजातीय रस। रूप ओ रस उभयेरइ सहचर भाव। रस रूप छाडा थाके ना अत एव रसेर उत्पत्ति ते ये रूप प्राक्तन रसकारण हय से रूप रूप ओ कारण हय। तबे ये समये आमरा अंधकारमयरात्रिते कोनओ फलेर रसास्वादन करि, से समये ताहार सामग्रीरओ अनुमान हय। अर्थात्--ए रसेर उत्पादिका कोनओ सामग्री आछे एवं से सा-मग्रीर अनुमान हइते रूपेरओ अनुमान हइया थाके। अर्थात् प्राक्तन रूप येमन सजातीय रूपके उत्पन्न करे सेरूप विजा-

तीयरसकेओ उत्पन्न करे । यखन एरूप अवस्था तखन रसह
इते समान सामग्रीर अनुमान एवं समान सामग्रीर अनुमा
हइते रसेर अनुमान स्वीकार करिले ताहाके कोनओ एकटं
कारण लिंगकेओ अवश्य स्वीकार करिते हइबे । यदि बल को
नओस्थाने कारण थाकिलेओ कार्येर अनुमान हय ना । ए
येखाने कारणेर सामर्थ्य कोनओ मणिमंत्र द्वारा अवरूद्ध ह
सेखानेओ कारण हइते कार्येर अनुमान हयना। एजन्य कारण
लिंग व्यभिचारी हओयाते ताहा अस्वीकार करिते हइबे एरू
वला उचित नय । ये हेतु–येखाने यत कारणेर आवश्यकता
से खाने से सकल हइबे एवं येखाने कारणेर सामर्थ्येर अवरो
धकारक मणिमंत्र प्रभृति हइबे ना सेखान नियमतः कार
हइते कार्येर अनुमान हइया याइबे, सेखाने कारणलिंग व्यभि
चारी होइते पारिबेना । अतएव बौद्ध येरूप स्वभावलिंग अ
कार्यलिंग स्वीकार करे सेरूप ताहाके कारणलिंगओ स्वीका
करिते हइबे ॥ ६० ॥

**न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्य तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधा
ने तदनुपलब्धेः ॥ ६१ ॥**

हिंदी—जहां तादात्म्यसंबंध होता है वहां तो स्वभावहे
कहा जाता है और जहां तदुत्पत्तिसंबंध होता है वहां कार्यलिं
होता है तथा एककालमें रहनेवाले साध्यसाधनोंका संबंध तादा
त्म्यसंबंध अथवा तदुत्पत्ति संबंध होता है । पूर्वचर और उत्तरच

हेतु साध्यके कालमें नहीं रहते इसलिये उनका तादात्म्यसंबंध
होनेसे तो वे स्वभाव हेतु नहीं कहे जाते और तदुत्पत्ति-
संबंध न रहनेसे कार्यहेतु नहिं होसकते किंतु स्वभाव आर
कार्यलिंगसे पूर्वचर उत्तरचरलिंग जुदे ही हैं ॥ ६१ ॥

बंगला—ये स्थाने तादात्म्य संबंध हय ताहाके स्वभाव
बलाहय । एवं ये खाने तदुत्पत्ति संबंध हय, ताहाके कार्य-
बलाहय । एवं एकइ कालेस्थित साध्यसाधनेर संबंध-ता-
त्म्य संबंध अथवा तदुत्पत्तिसंबंध हइया थाके । पूर्वचर ओ
उत्तरचर हेतु साध्यकाले थाके ना एइजन्य ताहादेर तादात्म्य-
संबंध ना हओयाते सेइ पूर्वचर उत्तरचर हेतुके स्वभावहेतु
बला जायना एवं तदुपत्तिसंबंध ना थाकाते कार्यहेतु हइते पारे
ना किंतु स्वभाव ओ कार्यलिंग हइते पूर्वचर उत्तरचरलिंग
पृथक्‌इ हइया थाके ॥ ६१ ॥

भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वं ॥६२॥

तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वं ॥६३॥

हिंदी—आगामी मरण और बीत हुआ जाग्रद्बोध (जा-
गती अवस्थाका ज्ञान) अपशकुन और उद्बोध (प्रातःकाल
सोकर उठना) के प्रति कारण नहिं हो सकते इसलिये आगामी
मरण और अपशकुन तथा अतीत जाग्रद्बोध और उद्बोधका
दृष्टांत लेकर बौद्ध जो कालके व्यवधानसे भी कार्यकारणभाव
मानता है सो निर्मूल हुआ क्योंकि कारण के सद्भावमें कार्यका

होना कारणके व्यापारके आधीन है उपर्युक्त दृष्टांतमें कार्यकी उत्पत्ति तक कारणका व्यापार रहता नहिं इसलिये वहां कार्य-कारणभाव नहिं बन सकता ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

बंगला—आगामी मरण ओ अतीत जाग्रद्बोध (जाग्रत अवस्थारज्ञान) अपशकुन ओ उद्बोधेर प्रति (प्रातः कालमुइया उठिबार प्रति) कारण हइते पारेना अतएव आगामी मरण ओ अपशकुन एवं अतीत जाग्रद्बोध उद्बोधेर दृष्टांत लइया बौद्ध ये कालेर व्यवधान हइतेओ कार्यकरणभाव स्वीकार करियाछे ताहा निर्मूल हइल । ये हेतु-कारणेर सद्भावे कार्येर अस्तित्व कारणव्यापारेर अधीन । उपर्युक्त दृष्टांत कार्योत्पत्तिपर्यंत कारणव्यापार थाकेना एइजन्य सेखाने कार्यकारण भाव हइते पारेना ॥ ६२-६३ ॥

सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च ॥६४॥

हिन्दी—रूप रस आदि सहचारी पदार्थोंकी प्रतीति आपसमें जुदी २ होती है इसलिये तो सहचर हेतुका स्वभाव हेतुमें अंतर्भाव नहिं होसकता तथा सहचारी पदार्थ साथ २ उत्पन्न होते हैं इसलिये सहचर हेतु कार्यहेतु नहिं कहा जाता इसलिये स्वभाव और कार्यसे सहचरलिंग जुदा ही है ॥ ६४ ॥

बंगला—रूप रस प्रभृति सहचारी पदार्थेर प्रतीति परस्पर पृथक् २ हइया थाके एइजन्य सहचर हेतुर स्वभाव हेतुर मध्ये अंतर्धान हइते पारे ना । एवं सहचारी पदार्थ एक काले

उत्पन्न हइतेछे एइजन्य सहचरहेतुके कार्यहेतु बला जायना। अतएव स्वभावलिंग ओ कार्यलिंग हइते सहचरलिंग पृथकइ थाके ॥ ६४ ॥

अविरुद्धव्याप्योपलब्धिका उदाहरण—

अविरुद्धव्याप्योपलब्धिर उदाहरण—

परिणामी शब्दः कृतकत्वात् य एवं स एवं दृष्टो यथा घटः, कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामी, यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टो यथा वन्ध्यास्तनंधयः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामी ॥ ६५ ॥

हिंदी—शब्द परिणमनस्वभावी है क्योंकि वह किया हुआ है जो जो पदार्थ किया हुआ होता है वह परिणामी देखा गया है जैसा घट । शब्द किया हुआ है इसलिये वह परिणामी है, जो परिणामी नहिं होता वह किया हुआ भी नहिं होता जैसा बांझ स्त्रीका लड़का । यह शब्द किया हुआ है इसलिये वह परिणामी है इस उदाहरणमें धर्मी आदि पांचों अंगका प्रकार बतलाया गया है अन्य उदाहरणोंमें भी इसी रीतिसे घटा लेना चाहिये ॥ ६५ ॥

बंगला—शब्द परिणमनस्वभाव । ये हेतु-ताहा किछु द्वारा कृत । ये ये पदार्थ कृत, ताहाकेइ परिणामी देखा याय । यथा-घट । शब्द कृत, एजन्य ताहा परिणामी । यें परिणामी हय ना, से कृत ओ हय ना । यथा-'वंध्या स्त्रीर पुत्र' ए शब्द उच्चारित वा कृत । ए जन्यइ ताहा परिणामी । एइ उदाहरणे

धर्मी प्रभृति अनुमानेर पंच अंगेर भेद कथित हइयाछे । अन्य उदाहरणेओ एरूप घटित करिया लइबे ॥ ६५ ॥

अविरुद्धकार्योपलब्धिका उदाहरण—

अस्त्यत्र देहिनि बुद्धिर्व्याहारादेः ॥ ६६ ॥

हिंदी—इस प्राणीमें बुद्धि है क्योंकि यह बोलता चलता आदि है यहां पर साध्यरूप बुद्धिका वचनादिस्वरूपहेतु कार्य है ॥ ६६ ॥

बंगला—अविरुद्धकार्योपलब्धिर उदाहरण–एइ प्राणीते बुद्धि आछे । ये हेतु-ए बलिते छे, चलिते छे । ए स्थाने साध्य-रूप बुद्धिर वचनप्रभृतिरूप हेतु कार्य हइयाछे ॥ ६६ ॥

अविरुद्ध कारणोपलब्धिका उदाहरण–

अविरुद्धकारणोपलब्धिर उदाहरण—

अस्त्यत्र छाया छत्रात् ॥ ६७ ॥

हिंदी—यहां छाया है क्योंकि छायाका कारण छत्र मौ-जूद है यहां साध्यस्वरूप छायाका कारण छत्र है ॥ ६७ ॥

बंगला—एईस्थाने छाया आछे । ये हेतु छायारकारण छत्र विद्यमान । एखाने साध्यस्वरूप छायार कारण छत्र आछे ॥ ६७ ॥

अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धिका उदाहरण--

अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धिर उदाहरण—

उदेष्यति शकटं कृतिकोदयात् ॥ ६८ ॥

हिंदी—मुहूर्तके पश्चात् शकट (रोहिणी) का उदय होगा क्योंकि इससमय कृतिकाका उदय है यहां पर पूर्वचर कृतिकाके उदयसे उत्तरचर रोहिणी के उदयका अनुमान किया गया है क्योंकि रोहिणी चौथा नक्षत्र है और कृत्तिका तीसरा नक्षत्र है ॥ ६८ ॥

बंगला—एक मुहूर्त्तेर पश्चात् रोहिणीनक्षत्रेर उदय हइबे, ये हेतु एइ समय कृत्तिकार उदय हइयाछे । ए स्थले पूर्वचर कृतिकार उदय हइते उत्तरचर रोहिणीर उदयहइबार अनुमान करा हइयाछे केननना रोहिणी चतुर्थनक्षत्र, कृतिका तृतीय नक्षत्र ॥ ६८ ॥

अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धिका उदाहरण--

अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धिर उदाहरण—

उदगाद्भरणिः प्राक्तत एव ॥ ६९ ॥

हिंदी—भरणि का उदय हो चुका क्योंकि इससमय कृत्तिकाका उदय है यहां उत्तरचर कृतिकाके उदयसे पूर्वचर भरणीके उदयका अनुमान किया गया है क्योंकि भरणि दूसरा नक्षत्र है और कृतिका तीसरा है ॥ ६९ ॥

बंगला—भरणिनक्षत्रेर उदय हइया गियाछे । ये हेतु एइ समय कृतिकार उदय विद्यमान । एखाने उत्तरचर कृति-कार उदय हइते पूर्वचर भरणिर उदयेर अनुमान करा गेल । केननना भरणी द्वितीय नक्षत्र एवं कृतिका तृतीय नक्षत्र ॥६९॥

अविरुद्धसहचरोपलब्धिका उदाहरण--
अविरुद्धसहचरोपलब्धिर उदाहरण—

अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात् ॥ ७० ॥

हिंदी—इस मातुलिंग, 'बिजोरा' में रूप है क्योंकि इसमें रस पायाजाता है यहांपर रससे रूपका अनुमान किया गया है क्योंकि विना रूपके रस रह नहिं सकता ॥ ७० ॥

बंगला—एइ मातुलिंगे रूप (वर्ण) आछे । ये हेतु इहाते रस विद्यमान। एस्थले रस हइते रूपेर अनुमान करा गेल। ये हेतु रूप छाडा रस थाकिते परिना ॥ ७० ॥

विरुद्धोपलब्धिके भेद--विरुद्धोपलब्धिर भेद—

विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा ॥ ७१ ॥

हिंदी—प्रतिषेधरूप साध्यके सिद्धकरनेवाली विरुद्धोपलब्धिके भी छै भेद हैं अर्थात् विरुद्धव्याप्योपलब्धि, विरुद्ध कार्योपलब्धि, विरुद्धकारणोपलब्धि, विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि, विरुद्ध उत्तरचरोपलब्धि, विरुद्धसहचरोपलब्धि ॥७१॥

बंगला—प्रतिषेधरूप सिद्धकारक विरुद्धोपलब्धि ओ छय प्रकार । येमन विरुद्धव्याप्योपलब्धि, विरुद्धकार्योपलब्धि, विरुद्धकारणोलपब्धि, विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि, विरुद्धउत्त रचरोपलब्धि एवं विरुद्धसहचरोपलब्धि ॥७१॥

विरुद्धव्याप्योपलब्धिका उदाहरण--
विरुद्धव्यप्योपलब्धिर उदाहरण—

नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ॥७२॥

हिंदी—इसस्थानपर शीतस्पर्श नहीं है क्योंकि उष्णता मौजूद है यहांपर शीतस्पर्शरूप साध्यसे विरुद्ध अग्निका व्याप्य उष्णतारूप हेतु है ॥७२॥

बंगला—एइ स्थाने शीतस्पर्श नाइ । ये हेतु एखाने उष्णता विद्यमान । एस्थले शीतस्पर्शरूपसाध्यहइते विरुद्ध अग्निर व्याप्य उष्णतारुपहेतु हेइया छे ॥७२॥

विरुद्धकार्योपलब्धिका उदाहरण—
विरुद्धकार्योपलब्धिरउदाहरण—

नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥७३॥

हिंदी—यहां शीतस्पर्श नहीं है क्योंकि शीतस्पर्शरूपसाध्य से विरुद्ध अग्निकाकार्य यहां धूआं मौजूद है ॥७३॥

बंगला—ऐ स्थाने शीतस्पर्श नाइ । ये हेतु शीतस्पर्श साध्यहइते विरुद्ध अग्निर कार्य धूम विद्यमान ॥७३॥

विरुद्धकारणोपलब्धिका उदाहरण--
विरुद्धकारणोपलब्धिर उदाहरण—

नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥७४॥

हिंदी—इस प्राणीमें सुख नहीं क्योंकि सुखसे विरुद्ध दुःखका कारण इसके मानसिक व्यथा मालूम पड़ती है ॥७४॥

बंगला—एइ व्यक्तिर मध्ये सुख नाइ । ये हेतु सुखहइते विरुद्ध दुःखेर कारण मानसिक पीड़ा इहार देखा याइतेछे ॥७४॥

विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिका उदाहरण—

विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिर उदाहरण—

नोदेष्यति मुहूर्तांते शकटं रेवत्युदयात् ॥७५॥

हिंदी—एक मुहूर्तके बाद रोहिणीका उदय न होगा क्योंकि इससमय रोहिणीसे विरुद्ध अश्विनी नक्षत्रसे पहले उदय होनेवाले रेवती नक्षत्रका उदय है अर्थात् रेवतीका उदय अश्विनी नक्षत्रसे पहले होता है इसलिये वह अश्विनीके उदयको ही जनावेगा रोहिणी आदिके उदयको नहीं ॥७५॥

बंगला—एक मुहूर्तेर (दुइघटिकार) पर रोहिणीनक्षत्र उदय हइबेना ये हेतु एसमये रोहिणीर विरुद्ध अश्विनीनक्षत्रेर पूर्व याहार उदय हय सेइ रेवती नक्षत्रेर उदय विद्यमान । अर्थात् रेवतीनक्षत्रेर उदय अश्विनी नक्षत्रेर पूर्वे हय एजन्य से अश्विनी नक्षेत्ररई उदय जानाय किंतु रोहिणी प्रभृतिर उदयेर अनुमान करायना ॥७५॥

विरुद्धउत्तरचेरोपलब्धिका उदाहरण

विरुद्ध उत्तरचरोपलब्धिर उदाहरण—

नोदगाद्भरणिर्मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥७६॥

हिंदी—मूहूर्त्तके पहिले भरणिका उदय नहिं हुआ क्योंकि इससमय भरणीके उदयसे विरुद्ध पुनर्वसुके पीछे होने वाले पुष्य नक्षत्रका उदय है अर्थात् पुष्य नक्षत्रका उदय पुनर्व

सुसे पीछे होता है इसलिये वह उसीको जनासकता है कि होगया भरणि आदिके उदयको नहीं ॥७६॥

बंगला—एइ मुहूर्ते पूर्वे भरणिर उदय हयनाइ । ये हेतु एइ समये भरणिर उदयेर विरुद्ध पुनर्वसुर पश्चात् याहार उदय हय सेई पुष्य नक्षत्रेर उदय विद्यमान । अर्थात् पुष्य नक्षत्रेर उदय पुनर्वसुनक्षत्रेर पश्चात् हइयाथाके एजन्य से ताहारउदय देखि बोध कराय भरणी आदिर उदयेर बोध करायना ॥७६॥

विरुद्ध सहचरोपलब्धिका उदाहरण—

विरुद्धसहचरोपलब्धिर उदाहरण—

नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात् ॥७७॥

हिंदी—इसभीतिमें उसओरके भागका अभाव नहीं है क्योंकि उस ओरके भागके अभावसे विरुद्ध किंतु उस ओरके भागका साथी इस ओरका भाग साफ दीख रहा है ॥७७॥

बंगला—ऐइ भित्तिर अपर पार्श्वेर पृष्ठभागेर अभाव नाइ । ये हेतु अपरपार्श्वेर अभावेर विरुद्ध ताहार सहचारी एइपार्श्वेर पृष्ठभाग स्पष्ट देखा जाइते छे ॥७७॥

प्रतिषेधरूपसाध्यको सिद्धकरने वाली अविरुद्धानुपलब्धिके भेद—

प्रतिषेधरूपसाध्येर सिद्धिकारक अविरुद्धानुपलब्धिर भेद

अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलंभभेदात् ॥७८॥

हिंदी—प्रतिषेध साध्य रहनेपर अविरुद्धानुपलब्धिके सात

भेद हैं--स्वभावानुपलब्धि, व्यापकानुपलब्धि, कार्यानुपलब्धि कारणानुपलब्धि, पूर्वचरानुपलब्धि,उत्तरचरानुपलब्धि,और सहचरानुपलब्धि ॥७८॥

बंगला–प्रतिषेध साध्यथाकिले अविरुद्धानुपलब्धि सप्त भेदे विभक्त । यथा-स्वभावानुपलब्धि, व्यापकानुपलब्धि, कार्यानुपलब्धि, कारणानुपलब्धि,पूर्वचरानुपलब्धि, उत्तरचरानुपलब्धि ओ सहचरानुपलब्धि ॥७८॥

अविरुद्धस्वभावानुपलब्धिका उदाहरण--

अविरुद्धस्वभावानुपलब्धिर उदाहरण—

नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः ॥७९॥

हिंदी–इस भूतलपर घट नहिं क्योंकि उसका स्वरूप नहिं दीखता यहांपर प्रतिषेधस्वरूप (घटाभाव) साध्य रहेनपर उसके अनुकूल अनुपलब्धिरूप हेतु है ॥७९॥

बंगला–एइ भूतले घटनाई ये हेतु ताहार रूप देखा जायना । एस्थले प्रतिषेधस्वरूप (घटाभाव) साध्य थाकिले ताहार अनुकूल अनुपलब्धिरूप हेतु हइया छे ॥७९॥

अविरुद्धव्यापकानुपलब्धिका उदाहरण—

अविरुद्धव्यापकानुपलब्धिर उदाहरण–

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ॥८०॥

हिंदी–यहां शिंशपा (शीस) नहिं क्योंकि कोई किसी प्रकारका यहां वृक्ष नहिं दीखता इसस्थान पर प्रतिषेधरूप

शिंशपका अभाव) व्याप्य साध्य है और उसके अनुकूल नुपलब्धि (वृक्षाभाव) व्यापक हेतु है अर्थात् यहांपर पकके अभावसे व्याप्यके अभावका अनुमान किया गया है

बंगला–एखाने शिंशपा नाई ये हेतु एस्थाने कोन ओ रेर कोनवृक्ष देखा जाय ना । एस्थले प्रतिषेधरूप (शिंश- अभाव) व्याप्ये साध्य ओ ताहार अनुकूल वृक्षानुपलब्धि क्षाभाव) व्यापक हेतु हइयाछे । अर्थात् एखाने व्यापकेर वे हइते व्याप्येर अभावेर अनुमान करा हइयाछे ॥८०॥

रुद्धकार्यानुपलब्धिका उदाहरण—

रुद्धकार्यानुपलब्धिर उदाहरण--

नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धेः ॥८१॥

हिंदी—यहां पर जिसकी सामर्थ्य किसी द्वारा रुकी नहीं ऐसी अग्नि नहीं क्योंकि यहां उसके अनुकूल धूआंरूप कार्य नहिं दीखता । इस स्थल पर धूमानुपलब्धिसे अप्रतिहत सामर्थ्ययुक्त अग्निके अभावरूप कारणानुपलब्धिका अनुमान किया गया ॥ ८१ ॥

बंगला—एस्थाने याहार सामर्थ्य काहारओद्वारा रुद्ध ना एरुप अग्नि नाई । येहेतु एइखाने ताहार अनुकूल रूप कार्य देखा जायेना । एइ स्थले धूम्रानुपलब्धिरूप लकार्यानुपलब्धि हइते अप्रतिहत सामर्थ्ययुक्त अग्निर रूप कारणानुपलब्धिर अनुमान करागेल ॥८१॥

अविरुद्धकारणानुपलब्धिका उदाहरण—

अविरुद्धकारणानुपलब्धिर उदाहरण—

नास्त्यत्रधूमो ऽग्नेः ॥ ८२ ॥

हिंदी—यहां धूआं नहीं पाया जाता क्योंकि उसके अनुकूल अग्निरूप कारण यहां नहीं है । यहां पर अनग्निरूप अविरुद्ध कारणानुपलब्धिसे धूमाभावरूप कार्यानुपलब्धिका अनुमान किया गया है ॥ ८२ ॥

बंगला—एइ स्थाने धूम्र नाई । ये हेतु ताहार अनुकूल अग्निरूप कारण एखाने नाइ । एइ स्थले अग्निरूप अविरुद्धकारणानुपलब्धि हइते धूमाभावरूप कार्यानुपलब्धिर अनुमान करा गेल ॥ ८२ ॥

अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धिका उदाहरण—

अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धिर उदाहरण—

न भविष्यति मुहूर्तांते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः ॥८३॥

हिंदी—एक मुहूर्तके बाद रोहिणीका उदय न होगा क्योंकि इससमय कृतिकाका उदय नहिं हुआ । यहां कृतिकोदयानुपलब्धिरूप अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धिसे शकटोदयाभावरूप उत्तरचरानुपलंभरूपसाध्यकी सिद्धि की गई ॥ ८३ ॥

बंगला—एक मुहूर्त्तर (घटिकाद्वयेर) पर रोहिणीर उदय हइबेना । ये हेतु एइ समये कृतिकार ओ उदय हय नाइ । एइ खाने कृतिकोदयानुपलब्धिरूप अविरुद्ध पूर्वचरानु-

लब्धि हइते शकटोदयाभावरूप उत्तरानुपलंभरूपसाध्येर सिद्धि करा हइया छे ॥ ८३ ॥

अविरुद्ध उत्तरचरानुपलब्धिका उदाहरण—

अविरुद्धउत्तरचरानुपलब्धिर उदाहरण—

नोदगाद्भरणिर्मूहर्तात्प्रक्त एव ॥ ८४ ॥

हिंदी—मूहूर्तके पहिले भरणिका उदय नहिं हुआ क्योंकि इससमय कृतिकाका उदय नहिं पाया जाता । यहां पर कृतिकोदयानुपलब्धिरूप अविरुद्ध उत्तरचरानुपलब्धिसे भरण्युदयाभावरूप पूर्वचरानुपलंभरूप साध्यकी सिद्धि हुई ॥८४॥

बंगला—मुहूर्त्तेर पूर्वे भरणिर उदय हय नाइ । ये हेतु एइ समये कृतिकार उदय देखा यायना । ए स्थले कृतिकोदयानुपलब्धिरूप अविरुद्ध उत्तरचरानुलब्धि हइते भरण्युदयाभावरूप पूर्वचरानुपलंभसाध्येरसिद्धि हइया छे ॥ ८४ ॥

अविरुद्धसहचरानुपलब्धिका उदाहरण—

अविरुद्ध-सहचरानुपलब्धिर उदाहरण—

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ॥८५॥

हिंदी—इस बराबर पलेड़वाली तराजूमें (एक पल्लेमें) ऊंचापन नहीं क्योंकि दूसरे पलेमें नीचापन नहिं पाया जाता । यहां नामानुपलब्धिरूप अविरुद्ध सहचरानुपलब्धिसे उन्नामाभावरूप सहचरानुपलब्धिरूप साध्यकी सिद्धि की गई ॥८५॥

बंगल—एइ पाल्लाय (एक दिकेर पाल्लाय) उच्चता

नाइ । ये हेतु अपर पाल्लाय निम्नता देखा यायना । एइ स्थले नामानुलब्धिरूप अविरुद्धसहचरानुपलब्धि हइते उन्नामाभावरूप सहचरानुपलब्धिरूप साध्येर सिद्धि करा हइया छे ॥८५॥

विधिरूप साध्यको सिद्ध करनेवाला विरुद्धानुपब्धिके भेद—

ये विधिरूपसाध्येर सिद्धि कर सेइ विरुद्धानुपलब्धिर भेद—

विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ त्रेधा विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ॥८६॥

हिंदी—विधिरूप साध्यके रहने पर विरुद्धानुपलब्धिके तीन भेद है-विरुद्ध कार्यानुपलब्धि, विरुद्धकारणनुपलब्धि और विरुद्धस्वभावानुपलब्धि ॥८६॥

बंगला—विधिरूप साध्य थाकिले विरुद्धानुपलब्धिर तिन भेद हय—यथा विरुद्धकार्यानुपलब्धि, विरुद्धकारणानुपलब्धि एवं विरुद्धस्वभावानुपलब्धि ॥ ८६ ॥

विरुद्धकार्यानुपलब्धिका उदाहरण—

विरुद्धकार्यानुपलब्धिर उदाहरण—

यथाऽस्मिन् प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धे ॥८७॥

हिंदी—जैसे-इस प्राणीमें कोई रोग विशेष है क्योंकि इसकी चेष्टा नीरोग मालूम नहिं पड़ता। यहां पर व्याधि विशेषसे विरुद्ध पदार्थका कार्य निरामय चेष्टा है इसलिये निरामय चेष्टा के अभावसे व्याधिविशेषका अनुमान करलिया जाता है ॥८७॥

बंगला—यथा येइ प्राणीते कोनओ प्रकारेर रोग आछे । ये हेतु इहा चेष्टा निरामयेर न्याय बोध हय ना । ए स्थले व्याधिविशेष हइते विरुद्धपदार्थेर कार्य निरामय चेष्टा । एइ जन्य निरामय चेष्टार अभावद्वारा व्याधिविशेषेर अनुमान करा याइते पारे ॥ ८७ ॥

विरुद्धकारणानुपलब्धिका उदाहरण—

विरुद्धकारणानुपलब्धिर उदाहरण—

अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ॥८८॥

हिंदी—यह प्राणी दुःखी है क्योंकि इसके पिता माता आदि प्रियजनोंका संबंध छूट गया है यहां पर दुःखसे विरुद्ध सुखका कारण इष्टसंयोग है इसलिये इष्टसंयोगके अभावसे दुःखका अनुमान किया जाता है ॥८८॥

बंगला—एइ व्यक्ति दुःखी । ये हेतु इहार पिता माता प्रभृति प्रियजनेर वियोग हइया छे । ए स्थले दुःखहइते विरुद्ध सुखेर कारण इष्टसंयोग । अतएव एइ इष्टसंयोगेर अभाव द्वारा दुःखेर अनुमान करा गेल ॥ ८८ ॥

विरुद्धस्वभावानुपलब्धिका उदाहरण—

विरुद्धस्वभावानुपलब्धिर उदाहरण—

अनेकांतात्मकं वस्त्वेकांतस्वरूपानुपलब्धेः ॥८९॥

हिंदी—हर एक पदार्थ नित्य अनित्य आदि अनेक धर्म वाला है क्योंकि केवल नित्यत्व आदि एक धर्मका अभाव है।

यहां पर अनेकांतसे विरुद्ध पदार्थका स्वभाव एकांत है इस लिये एकांत स्वरूपके अभावसे अनेकांत स्वरूपकी सिद्धि कर ली जाती है ॥ ८९ ॥

बंगल्या—प्रत्येकपदार्थइ नित्यत्व अनित्यत्व प्रभृति अनेक धर्म विशिष्ट । ये हेतु केवल नित्यत्वप्रभृति एक धर्मेर अभाव विद्यमान । एइ स्थल अनेकांत हइते विरुद्ध पदार्थेर स्वभाव एकांत । एइ जन्य एकांतस्वरूपेर अभावद्वारा अनेकांतस्वरूपेर सिद्धि करा हइयाछे ॥ ८९ ॥

परंपरया संभवत् साधनमत्रैवांतर्भावनीयं ॥९०॥

हिंदी—जो साक्षात् साधन तो न हों किंतु परंपरासे हों उनका अंतर्भाव उपर्युक्त साधनोंमें ही करलेना चाहिये उन्हे जुदे मानने की आवश्यकता नहीं है ॥९०॥ यथा—

बंगला—ये सकल साक्षात् साधन नहे किंतु परंपरा साधन हइते पारे ताहादेर अंतर्भाव उपर्युक्त साधनेर मध्येई करिया लईते हइवे । ताहादेर पृथक् स्वीकार करिवार आवश्यकता नाई ॥ ९० ॥ यथा—

अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ॥९१॥ कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥९१॥

हिंदी—इस चाकपर शिवक होगया क्योंकि इस समय स्थास देखनमें आ रहा है । यहां पर स्थास परंपरासे शिवकका कार्य है अर्थात् शिवकका साक्षात् कार्य छत्रक है और छत्रकका

कार्य स्थास है क्योंकि घटकी पर्याय पहले शिवक तत्पश्चात् छत्रक और उस से भी पश्चात् स्थास होती है । इस प्रकार यह कार्यकार्य रूप साधन अविरुद्धकार्योपलब्धिमें अंतर्भूत होता है ॥९१॥ ९२ ॥ क्योंकि—

बंगला—एइ चाकेर उपरि शिवक (माटीर शिवाकार पिंड विशेष) हइया छे । ये हेतु एइ समय स्थास देखा याते छे । एइ स्थल स्थास परंपरा रूपे शिवकेर कार्य । अर्थात्—शिवकेर साक्षात् कार्य छत्रक एवं छत्रकेर कार्य स्थास । ये हेतु घटेर पूर्वपर्याय शिवक तत्पश्चात् छत्रक एवं तत्पश्चात् स्थास हइया थाके । एवं प्रकार एइ कार्यकार्यरूपसाधन अविरुद्धकार्योपलब्धिर अंतर्भूत हइते पारे ॥९१॥९२॥ केननां—

नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्ध कार्यविरुद्ध कार्योपलब्धौ यथा ॥९३॥

हिंदी—यथा-इस गुफामें मृग क्रीड़ा नहिं करते क्योंकि इसमें सिंह गरज रहा है । यहां कारणविरुद्धकार्य विरुद्धकार्योपलब्धिमें अंतर्भूत होता है अर्थात्—यहां मृगक्रीड़ाका कारणमृग उससे विरुद्ध सिंह उसका कार्य गरजना है ॥९६॥

बंगला—यथा एइ गुफाय मृग क्रीड़ा करे ना । ये हेतु इहाते सिंह गर्जन करिते छे । एइ स्थल कारणाविरुद्धकार्य विरुद्ध कार्योपलब्धिते अंतर्भूत हइया छे । अर्थात् एइखाने मृग क्रीडार कारण मृग, ताहार विरुद्ध सिंह ओ ताहार कार्य गर्जन हइ छे ९३

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्यान्यथानुपपत्त्यैव वा ॥९४॥

अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा। हेतुप्रयोगे हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते ॥ ९६ ॥ तावता च साध्यसिद्धिः ॥ ९७॥ तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ॥९८॥

हिंदी—व्युत्पन्न पुरुषके लिये तो साध्यके होते ही साधन का होना और साध्यके अभावमें साधनका न होना, केवल बस इतना ही प्रयोग (हेतुका प्रयोग) काफी है । जैसा-यह प्रदेश अग्निवाला है क्योंकि यहां अग्निके रहने पर ही धूम हो सकता है । अग्निके अभावमें धूम नहिं रह सकता। क्योंकि जिसहेतुकी व्याप्ति किसी न किसी साध्यके साथ निश्चित हो चुकी है उसी हेतुका प्रयोग किया जाता है किंतु विद्वान् लोग उदाहरण आदिकी सहायताके विनाही उस हेतुके प्रयोग सेही व्याप्ति निश्चय करलेते हैं ॥ एवं उस अविनाभावी (साध्यके विना न होनेवाले) हेतुके प्रयोगसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है और इसीलिये अविनाभावी हेतुके आधार बतलानेके लिये पक्षका प्रयोग करना आवश्यक कहा है ॥९४॥ ९५॥९६॥९७॥९८॥

बंगला—किंतु व्युत्पन्न व्यक्तिर जन्य केवल साध्य थाकिलेइ साधनेर अस्तित्व एवं साध्याभावे साधन हयना एतावन्मात्रइ प्रयोग करा (हेतुप्रयोग) उचित । यथा-एइ प्रदेश अग्नि-

विशिष्ट ये हेतु एइस्थाने अग्निथाकिलेई धूम हइते पारे। अग्निर अभावे धूम थाकेना । केन ना ये हेतुर व्याप्ति कोनओ प्रकारेर साध्येर संगे निश्चित हइया छे सेइ हेतुरइ प्रयोग करा याय । किंतु विद्वान् लोक उदाहरण प्रभृतिर सहायता ना लइयाइ सेइ हेतुर प्रयोगद्वारइ व्याप्तिर निश्चय करिया लय एवं सेइ अविनाभावी हेतुर प्रयोगद्वाराइ साध्येर सिद्धि हइया याय । अतएव अविनाभावी हेतुर आधार जानाइवार जन्य पक्षेर प्रयोग करा आवश्यकीय वला हइयाछे ॥९४॥९५॥९६ ९७॥९८॥

आगमस्वरूप ।

आप्तवचनादिनिबंधनमर्थज्ञानमागमः ॥ ९९ ॥ सहजयोग्यतासंकेतवशाद्धि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ॥ १०० ॥ यथा मेर्वादयः संति ॥१०१॥

हिंदी—आप्तके वचन आदिसे होनेवाले पदार्थोंके ज्ञानको आगम कहते हैं । आप्तके वचन आदिसे पदार्थोंका ज्ञान क्यों हो जाता है ? यह संशय युक्त नहीं क्योंकि शब्दके और अर्थोंके अन्दर एक स्वाभाविक योग्यता वाच्य वाचक शक्ति है अर्थात् शब्दमें वाचकशक्ति और अर्थमें वाच्य शक्ति है उसमें संकेत होनेसे अर्थात् इस शब्दका वाच्य यह अर्थ है ऐसा ज्ञान होजानेसे शब्द आदिसे पदार्थोंका ज्ञान होता है । जिस प्रकार मेरु आदि पदार्थ हैं अर्थात् मेरु शब्दके

उच्चारण करनेसेही जंबूद्वीपके मध्यमें स्थित सुमेरुका ज्ञान होजाता है इसी प्रकार अन्य पदार्थोंका भी समझ लेना चाहिये ॥९९॥१००॥१०१॥

इति परीक्षामुखसूत्रार्थे तृतीयोद्देशः ॥३॥

बंगला—आप्तेरवचन प्रभृतिर द्वारा पदार्थेर ये ज्ञान हय ताहाके आगम बल । आप्तवचन प्रभृतिद्वारा पदार्थेर यथार्थ ज्ञान केन हय एइ प्रकार संशय युक्त नहि । ये हेतु शब्द ओ अर्थेर मध्ये एकटि स्वाभाविक योग्यता वाच्य वाचक शक्ति आछे । अर्थात् शब्देर वाचक शक्ति एवं अर्थ वाच्य शक्ति ताहाते संकेत हओयाते अर्थात् एइ शब्देर वाच्य एइ अर्थ एइ प्रकार भान हओयाते शब्द प्रभृति द्वारा पदार्थेर ज्ञान हय। यथा मेरु प्रभृति पदार्थ अर्थात् मेरु शब्देर उच्चारण करिलेइ जंबूद्वीपमध्यस्थ सुमेरु पर्वतेर ज्ञान थाय । एइ प्रकार अन्यान्य पदार्थेर ओ बुझियो लइबे ॥९९॥१००॥१०१॥

इति परीक्षामुखसूत्रार्थे तृतीयोद्देशः ॥३॥

अथ चतुर्थोद्देशः

सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥ १ ॥ अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्पूर्वोत्तराकारापरिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ॥ २ ॥

हिंदी—सामान्य और विशेषस्वरूप अर्थात् द्रव्य और

पर्यायस्वरूप पदार्थ, प्रमाणका विषय होता है। क्योंकि-प्रत्येक पदार्थ में अनुवृत्तप्रत्यय-सामान्यप्रत्यय और व्यावृत्तप्रत्यय विशेष प्रत्यय होते हैं जैसे पुरुषमें पुरुष ऐसा सामान्य प्रत्यय और ब्राह्मण है वैश्य है इत्यादि विशेष प्रत्यय होते हैं। तथा-पूर्व आकारका त्याग उत्तर आकारकी प्राप्ति और स्वरूपकी स्थिति रूप परिणामोंसे अर्थक्रिया होती है । जैसे-कोई पुरुष जिस समय अपनी बाल्य अवस्था समाप्त कर युवा अवस्थामें पदार्पण करता है उस समय उसकी पूर्व अवस्था बाल्य अवस्थाका त्याग और उत्तर अवस्था युवा अवस्थाकी प्राप्ति एवं पुरुषत्व रूपसे दोनों अवस्थामें स्थिति रहती है अर्थात् एकही पुरुषमें पुरुषत्व और ब्राह्मणत्व रूप सामान्य विशेष धर्म तथा उत्पाद व्यय और स्थिति रूप परिणाम रहते हैं । इसी प्रकार हरएक पदार्थमें समझ लेने चाहिये ॥ १ । २ ॥

बंगला—सामान्य ओ विशेषरूप अर्थात् द्रव्य एवं पर्यायस्वरूप पदार्थ प्रमाणेर विषय हय । ये हेतु प्रत्येक पदार्थे अनुवृत्तप्रत्यय सामान्यप्रत्यय एवं व्यावृत्तप्रत्यय विशेषप्रत्यय हय । यथा-पुरुषे पुरुष एइ प्रकार सामान्यप्रत्यय एवं ब्राह्मण, वैश्य प्रत्यय विशेषप्रत्यय हइया थाके । एवं पूर्वाकारेर त्याग ओ उत्तराकारेर प्राप्ति एवं स्वरूपेर स्थितिरूप परिणामद्वारा अर्थ क्रिया हइया थाके । यथा कोनेओ व्यक्ति ये समय स्वकीय बाल्यावस्था समाप्त करिया युवावस्थाय पदार्पण करे सेइ समये

ताहार बाल्यावस्थार (पूर्वावस्थार) त्याग एवं युवावस्थार (उत्तरावस्थार) प्राप्ति ओ पुरुषत्वरूप उभयावस्थाय स्थिति थाके । अर्थात् एकइ पुरुषे पुरुषत्व एवं ब्राह्मणस्वरूप सामान्य विशेषधर्म ओ उत्पादव्यय एवं स्थितिरूप परिणाम थाके । एइ प्रकार प्रत्येक पदार्थे बुझियो लइबे ॥ १ । २ ॥

सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात् ॥ ३ ॥ सदृशपरिणामस्तिर्यक् खंडमुंडादिषु गोत्ववत् ॥ ४ ॥ परापरविवर्तव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु ॥ ५ ॥

हिंदी—सामान्य दो प्रकारका है एक तिर्यक्सामान्य दूसरा ऊर्ध्वता सामान्य । समान परिणामको तिर्यक् सामान्य कहते हैं जैसा गोत्व सामान्य क्योंकि खाडी मुंडी आदि गौवोंमें गोत्व सामान्य समानरीतिसे रहता है । तथा पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें रहनेवाले द्रव्यको (सामान्यको) ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं जैसे मिट्टी क्योंकि स्थास कोश कुसूल आदि जितनीपर्याये हैं उन सबमें मिट्टी अनुगत रूपसे रहती है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

बंगला—सामान्य दुइ प्रकार । एक तिर्यक्सामान्य अपरटि-ऊर्ध्वता सामान्य । सामान्य परिणामके तिर्यक् सामान्य बले । यथा—गोत्व सामान्य येहेतु खंड मुंडादि गोरुते गोत्वसामान्य समानभावे थाके । एवं पूर्वोत्तरपर्यायस्थ द्रव्यके (समान्यके) ऊर्ध्वतासामान्य बला हय । यथा मृत्तिका । ये हेतु स्थास कोश कुसूलप्रभृति सकल पर्यायेइ मृतिका अनुगतरूपे थाके ॥३॥४॥५॥

विशेषश्च ॥६॥ पर्यायव्यतिरेकभेदात् ॥ ७ ॥ एकस्मिन् द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् ॥ ८ ॥ अर्थांतरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् ॥ ९ ॥

हिंदी—पर्याय और व्यतिरेकके भेदसे विशेषभी दो प्रकार का है । एकही द्रव्यमें क्रमसे होनेवाले परिणामों को पर्याय कहते हैं जैसे एकही आत्मामें हर्ष और विषाद । तथा भिन्न २ पदार्थों में रहने वाले विलक्षण परिणामको व्यतिरेक विशेष कहते हैं जैसे गौ और भैंस अर्थात् गौ और भैंस ये भिन्न २ पदार्थों के परिणाम हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

बंगला—पर्याय एवं व्यतिरेक भेदे विशेषओ दुइ प्रकार एकइ द्रव्य क्रमशः उत्पन्न परिणामके पर्याय विशेष बले । यथा एकइ आत्मातें हर्ष ओ विषाद क्रमशः उत्पन्न हय । एवं भिन्न २ पदार्थेस्थित परिणामकें व्यतिरेकविशेष बला हय । यथा गोमहिष अर्थात गो महिष भिन्न २ पदार्थेर परिणाम ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

इति परीक्षामुखसूत्रार्थे चतुर्थोद्देशः ॥ ४ ॥

अथ पंचमोद्देशः ।

अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलं ॥ १ ॥

हिंदी—अज्ञानकी निवृत्ति, त्यागना, ग्रहण करना और

उपेक्षा करना ये प्रमाणके फल हैं । अर्थात् प्रमाणसे ये बातें होती है यहां प्रमाणका साक्षात्फल अज्ञाननिवृत्ति है और शेष फल गौण है ॥ १ ॥

बंगला—अज्ञानेर निवृत्ति, त्याग, ग्रहण एवं उपेक्षा कराइ प्रमाणेर फल । एस्थले अज्ञाननिवृत्ति फल प्रमाणेर प्रधान फल । एवं त्याग, ग्रहण, उपेक्षा गौण फल ॥ १ ॥

प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ॥२ ॥ यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः ॥ ३ ॥

हिंदी—फल प्रमाणसे कथंचित् अभिन्न और कथंचित् भिन्न है । क्योंकि जो प्रमाण करता है—जानता है उसीका अज्ञान दूर होता है और वही किसी पदार्थका त्याग वा ग्रहण अथवा उपेक्षा करता है इसलिये तो प्रमाण और फलका अभेद है किन्तु प्रमाण फलकी भिन्न २ भी प्रतीति होती है इसलिये भेद भी है ॥ २ ॥ ३ ॥

बंगला—प्रमाण हइते फलके कथंचित् भिन्न बला याय । ये हेतु—ये व्यक्ति प्रमाण करे ओ जाने ताहारइ अज्ञान दूर हय एवं सेइ व्यक्तिइ कानओ पदार्थेर त्याग, ग्रहण अथवा उपेक्षा करे एइ हेतुते प्रमाण ओ फलेर अभेद किन्तु प्रमाण ओ फलेर भिन्न भिन्न ओ प्रतीति हय एइजन्य फलके प्रमाण हइते भिन्न ओ बला याय ॥ २ ॥ ३ ॥

इति परीक्षामुखसूत्रार्थे पंचमोद्देशः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोद्देशः ।

ततोन्यत्तदाभासं ॥ १ ॥

हिंदी—पहिले कहे गये प्रमाणके स्वरूप संख्या विषय फलसे विपरीत स्वरूप संख्या आदि प्रमाण स्वरूपाभास संख्याभास विषयाभास और फलाभास कहे जाते हैं ॥ १ ॥

बंगला—पूर्वोक्त प्रमाणेर स्वरूप संख्या विषय ओ फल हइते विपरीत (स्वरूप संख्या आदिर आभास) प्रमाण स्वरूपाभास संख्याभास विषयाभास ओ फलाभास बला याइतेछे ॥ १ ॥

अस्वसंविदितगृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः । स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् । पुरुषांतरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत् ॥ २ । ३ । ४ ॥

हिंदी—अस्वसंविदितज्ञान, गृहीतार्थज्ञान, (धारावाहिकज्ञान) दर्शन, संशय, एवं आदिपदसे विपर्ययज्ञान, और अनध्यवसायज्ञान, ये सब प्रमाणाभास हैं । क्योंकि ये ज्ञान वास्तविक रीतिसे अपने विषयका निश्चय नहिं कराते । जिस प्रकार दूसरे पुरुषका ज्ञान, मार्गमें जाते हुये पुरुषका तृणस्पर्श ज्ञान, यह स्थाणु है वा पुरुष है यह ज्ञान, आदि पदसे सीपमें रजतका ज्ञान, आदि । क्योंकि स्वविषयका वास्तविकरीतिसे निश्चय न करानेसे ये भी प्रमाणाभास कहे जाते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

बंगला—अस्वसंविदितज्ञान गृहितार्थज्ञान (धारावाहिक

ज्ञान) दर्शन संशय एवं आदिपदग्राह्य विपर्य्ययज्ञान ओ अनध्यवसाय ज्ञान एइ सकल प्रमाणाभास, येहेतु एइ सकलज्ञान वास्तविकरूप निजविषयेर निश्चय करेना। येमन द्वितीय पुरुषेर ज्ञान, पथे चलिवार समय तृणादिस्पर्शज्ञान, इहा कि स्थाणु वा पुरुष एइ संशय ज्ञान, सूत्रेर आदिपदग्राह्य शुक्तिते रजतज्ञान ओ प्रमाणाभास। केनना उहा ओ वास्तविकरूप निजविषयेर निश्चय करायना ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

चक्षूरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च ॥ ५ ॥

हिंदी—द्रव्यमें चक्षु और रसका संयुक्त समवाय संबंध रहने पर भी जैसा वह प्रमाण नहिं माना जाता क्योंकि नैयायिक मतानुसार वहां कोई प्रमाणका फल नहिं होता उसी प्रकार चक्षु और रूपका संयुक्त समवाय संबंध भी प्रमाण नहिं कहा जा सकता क्योंकि वहां भी प्रमाणका फल नहिं होसकता इसलिये सन्निकर्ष भी प्रमाण नहिं होसकता इस सूत्रसे सन्निकर्षरूप प्रमाण विशेषका खंडन किया गया है ॥ ५ ॥

बंगला—द्रव्ये चक्षु ओ रसेर संयुक्त समवाय संबंध थाकिलेओ येमन चक्षु द्वारा रसेर प्रमाण जन्मेना केनना नैयायिकमते ए स्थले कोन प्रमाणेर फलइ हयना, से रूप चक्षु ओ रूपेर संयुक्त समवाय ओ प्रमाण नहे । इहा बलायाय ये से स्थानेओ कोनओ प्रमाणेर फल जन्मेना सुतरां सन्निकर्ष

प्रमाणइ हइते पारेना। एइ सूत्र द्वारा नैयायिककृत सन्निकर्षेर प्रामाण्य खंडित हइल ॥ ५ ॥

अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्माद्धूमदर्शनाद्वह्निविज्ञानवत् ॥ ६ ॥

हिंदी—प्रत्यक्ष ज्ञानको अविशद स्वीकार करना प्रत्यक्षाभास कहा जाता है जिस प्रकार बौद्ध द्वारा प्रत्यक्षरूपसे अभिमत–आकस्मिक धूमदर्शनसे उत्पन्न अग्निका ज्ञान अविशद होनेसे प्रत्यक्षाभास कहलाता है ॥ ६ ॥

बंगला—प्रत्यक्षज्ञानेर अविशदता स्वीकार करिले ताहा प्रत्यक्षाभास–पदवाच्य हय । येमन बौद्धगणेर प्रत्यक्ष रूप अभिमत आकस्मिक धूमदर्शन–द्वारा उत्पन्न अग्निर ज्ञान अविशद सुतरां ताहा प्रत्यक्षाभास ॥ ६ ॥

वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणस्य ज्ञानवत् ॥७॥

२—नैयायिकमते रूपादिर ज्ञान संयुक्त समवाय संबंध हय। चक्षु संयुक्त घट, ताहाते रूप समवेत आछे सुतरां संयुक्त समवाय संबंध रूपेर ज्ञान हइते पारे । एइ सूत्र द्वारा ताहा खंडन करा याइतेछे । चक्षु संयुक्त फले रस समवाय संबंध थाकिलओ चक्षु द्वारा ताहार ज्ञान हयना सुतरां संयुक्त समवायादि संबंध ज्ञान हओया प्रतीति विरुद्ध। आर उहा प्रतीति विरुद्ध हइले एइ कथा स्वीकारेर मूलीभूत सन्निकर्षेर प्रामाण्य वादओ खंडित हइल।

हिंदी—परोक्षज्ञानको विशद मानना परोक्षाभास है जिस प्रकार परोक्षरूपसे अभिमत मीमांसकोंका इंद्रियजन्यज्ञान विशद होनेसे परोक्षाभास कहा जाता है ॥ ७ ॥

बंगला—परोक्ष ज्ञान विशद हइले ताहा परोक्षाभास। येमन मीमांसकेर परोक्षरूपे अभिमत इंद्रियजन्यज्ञान विशद हओयाय ताहा परोक्षाभास ॥ ७ ॥

अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते स देवदत्तो यथा ॥८॥

हिंदी—जिस पदार्थको पहिले सुन वा देख रक्खा है कालांतर में उसका स्मरण न होकर उसकी जगह दूसरेका स्मरण होना स्मरणाभास है जिस प्रकार पूर्व अनुभूत जिनदत्त की जगह देवदत्त का स्मरण स्मरणाभास कहा जाता है ॥८॥

बंगला—ये पदार्थके प्रथम देखिया सुनिया राखा हइया छे कालांतरे उहार स्मरण ना हइया उहार स्थाने अन्य आर किछुर स्मरण हइले ताहा स्मरणाभास। येमन पूर्वे जिनदत्तके देखियाछि एखन तत्स्थाने यदि देवदत्तेर स्मरण हय तवे उहा स्मरणाभास हइवे ॥ ८ ॥

सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासं ॥ ९ ॥

हिंदी—सदृशमें यह वही है ऐसा ज्ञान और यह वही है इस जगह यह उसके समान है, ऐसा ज्ञान प्रत्यभिज्ञानाभास कहा जाता है जैसे–एक साथ उत्पन्न हुए मनुष्यों में तदेवेदं

की जगह तत्सदृश और तत्सदृशकी जगह तदेवेदं यह ज्ञान प्रत्यभिज्ञानाभास कहा जाता है ॥ ९ ॥

बंगला—सदृश स्थले 'इहा अमुकइ' एइरूप ऐक्यबोध वा ताही इहाइ एइ ज्ञान स्थले 'इहा तत्सदृश' एइ ज्ञान हइले ताहा प्रत्यभिज्ञानभास। येमन यमज मनुष्य द्वयेर मध्ये "तदेवेदं" एर स्थले तत्सदृशज्ञान वा "तत्सदृशं" ज्ञानस्थले 'तदेवेदं' ज्ञान एइ उभयइ प्रत्यभिज्ञानाभास ॥ ९ ॥

असंबद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासं ॥ १० ॥

हिंदी—जिन पदार्थोंका आपसमें अविनाभाव संबंध नहिं उनका संबंध मानना तर्काभास है ॥ १० ॥

बंगला—ये पदार्थेर सरूपतः कोनरूप संबंध नाइ, उहादेर संबंध स्वीकार कराके तर्काभास बले ॥ १० ॥

इदमनुमानाभासं ॥११॥ तत्रानिष्टादि पक्षाभासः ॥१२॥ अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः ॥ १३ ॥ सिद्धः श्रावणः शब्दः ॥१४॥ बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः ॥१५॥

हिंदी—अब अनुमानाभास कहते हैं। वहांपर इष्ट असिद्ध और अबाधितसे विपरीत अनिष्ट सिद्ध और बाधित पक्षाभास हैं। शब्दकी अनित्यता मीमांसकको अनिष्ट है क्योंकि मीमांसक शब्दको नित्य मानता है। शब्द कानसे सुना जाता है यह सिद्ध है। तथा प्रत्यक्षबाधित अनुमानबाधित आगमबाधित

लोकबाधित एवं स्ववचनबाधितके भेदसे बाधित पांच प्रकार है ॥ ११–१५ ॥

बंगला—एखन अनुमानाभास बलितछि । तन्मध्ये इष्ट असिद्ध ओ अबाधितेर विपरीत अनिष्ट सिद्ध ओ बाधितके पक्षाभास बला याय । शब्देर अनित्यता मीमांसकेर मते अनिष्ट केनना मीमांसकगण शब्देर नित्यता मानिया थाकेन । शब्द श्रवणेंद्रिय ग्राह्य इहा सिद्ध । सेइरूप प्रत्यक्षबाधित, अनुमान-बाधित, आगमबाधित, लोकबाधित एवं स्ववचनबाधित भेदे बाधित पाँच प्रकार ॥ ११–१५ ॥

तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा-अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वाज्जलवत् ॥१६॥

हिंदी—अग्नि शीतल है क्योंकि द्रव्य है जैसा जल यह प्रत्यक्षबाधित का उदाहरण है क्योंकि स्पार्शन प्रत्यक्षसे अग्निकी शीतलता बाधित है ॥ १६ ॥

बंगला—अग्नि शीतल येहेतु उहा द्रव्य, येमन जल एइ स्थले अग्निर शैत्य प्रत्यक्षबाधित, केनना स्पर्श द्वारा अग्नि शीतलता बाधित हइयाछे ॥ १६ ॥

अपरिणामी शब्दः कृतकत्वाद् घटवत् ॥ १७ ॥

हिंदी—शब्दका परिणाम नहीं होता क्योंकि वह किया हुआ है जैसा घट, यह अनुमानबाधित का उदाहरण है अर्थात् (शब्दः परिणामी कृतकत्वाद्घटवत्) शब्द परिणामी है क्योंकि किया हुआ है जैसा घट यह अनुमान उसका बाधक है ॥१७॥

येमन शंख शुक्ति प्रभृति । इहा लोकबाधित, केनना शंख शुक्तिर मन मनुष्य मस्तकेर अस्थिके केह पवित्र वलेना ।१९।

माता मे बंध्या पुरुषसंयोगेप्यगर्भवत्त्वात्प्रसिद्धबंध्यावत् २०

हिंदी—मेरी मा वांझ है क्योंकि पुरुषके संयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता जैसा प्रसिद्ध बंध्या स्त्रीके पुरुष के संयोग रहने पर भी गर्भ नहिं रहता । यह स्ववचनबाधित का उदाहरण है क्योंकि मेरी मां और वांझ ये बाधित वचन हैं ॥ २० ॥

बंगला—आमार माता बंध्या, केनना पुरुषसंयोग हइले ओ ताहार गर्भ हइतेछेना, येमन प्रसिद्ध बंध्या पुरुष संयोग हइलेओ गर्भवती हयना इहा स्ववचन बाधितेर उदाहरण । केनना 'आमार माता' ओ 'वंध्या' एइ दुइटी कथा परस्पर बाधित ॥ २० ॥

हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकांतिकाकिंचित्कराः ॥२१॥

हिंदी—हेत्वाभासके चार भेद हैं असिद्धहेत्वाभास विरुद्ध-हेत्वाभास अनैकांतिकहेत्वाभास और अकिंचित्कर हेत्वाभास॥२१॥

बंगला—हेत्वाभास चारिप्रकार–असिद्ध, विरुद्ध, अनैकांतिक ओ आकिंचित्कर ॥ २१ ॥

स्वरूपासिद्धहेत्वाभास–

असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः ॥ २२ ॥

हिंदी—जिसकी सत्ताका पक्षमें अभाव हो और निश्चय

बंगला—'शब्द अपरिणामी ये हेतु उहा कृतक येमन घट' इहा अनुमानबाधितेर उदाहरण–अर्थात् (शब्दः परिणामी कृतकत्वात् घटवत्) शब्द परिणामी येहेतु उहा कृतक येमन घट एइ अनुमान पूर्वोक्त अनुमानेर बाधक आछे ॥ १७ ॥

प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत् ॥ १८॥

हिंदी—धर्म परभवमें दुःख देने वाला है क्योंकि वह पुरुषके आधीन है जैसा अधर्म यह आगम बाधितका उदाहरण है क्योंकि आगममें धर्म परभवमें सुखका देने वाला और अधर्म दुख देने वाला कहा गया है ॥ १८ ॥

बंगला—'धर्म्म परलोके दुःखदायी केनना उहा पुरुषाधीन, येमन अधर्म्म, इहा आगम बाधितेर उदाहरण, केनना 'धर्म्म परलोके सुखप्रद' इहा आगम हइते जाना याइतेछे । अधर्म्म वस्तुतः परजन्मे दुखःदायी इहा आगम वले ॥ १८ ॥

शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यंगत्वाच्छंखशुक्तिवत् ॥१९ ॥

हिंदी—मनुष्यके मस्तककी खोपड़ी पवित्र है क्योंकि वह प्राणीका अंग है जिसप्रकार शंख सीप प्राणीके अंग होनेसे पवित्र गिने जाते हैं । यह लोकबाधितका उदाहरण है क्योंकि लोकमें शंख सीपकी तरह खोपड़ीको कोई पवित्र नहिं कहता ॥ १९ ॥

बंगला—नरशिरोऽस्थि पवित्र येहेतु उहा प्राणीर अंग

न हो उसे असिद्ध कहते हैं अर्थात् पक्षमें जिसकी सत्ताका अभाव हो उसे स्वरूपासिद्ध कहते हैं । और पक्ष में जिसकी सत्ताका निश्चय न हो उसै संदिग्धासिद्ध कहते हैं ॥ २२ ॥

बंगला—याहार सत्ता पक्षे अविद्यमान अथवा संदिग्ध मोटेर उपर याहार सत्ता पक्षे निश्चित नहे, ताहाके आसिद्ध वले । तन्मध्ये याहार सत्ता पक्षे अविद्यमान ताहाके स्वरुपासिद्ध एवं पक्षे याहार सत्तार संदेह आछे ताहाके संदिग्धासिद्ध कहे २२

संदिग्धासिद्धहेत्वाभास–

अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ॥ २३ ॥

स्वरूपेणासत्त्वात् ॥ २४ ॥

हिंदी—शब्द परिणामी है क्योंकि वह आंख से देखा जाता है । यह अविद्यमानसत्ताक अर्थात् स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास है । क्योंकि शब्द कानसे सुना जाता है आंख से नहिं देखा जाता इसलिये शब्द (पक्ष) में चाक्षुषत्व हेतुका स्वरूप ही नहिं रहता ॥ २३ ॥ २४ ॥

बंगला—शब्द परिणामी येहेतु उहा चक्षुर्ग्राह्य अविद्यमान सत्ताक, अर्थात् स्वरूपासिद्ध हेत्वाभासेर दृष्टांत । केनना शब्द श्रवणेंद्रियग्राह्य चाक्षुष नहे । एइजन्य पक्षे शब्दे चाक्षुष हेतुर स्वरूपतइ अभाव आछे ॥ २३ ॥ २४ ॥

अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रति-अग्निरत्र धूमात् ॥ २५ ॥ तस्य वाष्पादिभावेन भूतसंघाते संदेहात् ॥ २६ ॥

हिंदी—अनुमानस्वरूपसे सर्वथा अनभिज्ञ किसी मूर्ख मनुष्यके सामने कहना कि यहां अग्नि है क्योंकि धूआं है यह अविद्यमाननिश्चय अर्थात् संदिग्धासिद्ध है । क्योंकि मूर्ख मनुष्य किसी समय पृथ्वी जल आदि भूत संघात (वटलोई आदि) में भाफ आदिको देखकर यहां अग्नि है या नहिं, ऐसा संदेह कर बैठता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

बंगला—अनुमान स्वरूपानभिज्ञ केह कोन मूर्खेर निकट यदि वले ये एखाने अग्नि आछे केननो धूम आछे तवे ताहा संदिग्धासिद्ध । केननो ऐ मूर्खेर भूत संघाते वाष्पप्रभृति देखिया एखाने अग्नि आछे ना नाइ एइ संदेह हइया थाके २५॥२६

सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात् ॥ २७॥ तेनाज्ञातत्वात् ॥ २८ ॥

हिंदी—शब्द परिणामी है क्योंकि वह किया हुआ है यहां सांख्यके प्रति कृतकत्व हेतु संदिग्धासिद्ध है क्योंकि सांख्य मतमें पदार्थोंका आविर्भाव तिरोभाव माना गया है उत्पाद और व्यय नहिं इसलिये वह कृतकताको नहिं जानता ॥२७॥२८॥

बंगला—' शब्द परिणामी केनना ताही कृतक ' सांये प्रति एइ अनुमान संदिग्धासिद्ध, केनना सांख्यमते पदार्थेर आविर्भाव तिरोभाव स्वीकार कराहय, उत्पत्ति विनाश ताहारा मानेना सुतरां कृतकत्व ताहादेर अविज्ञेय पदार्थ २७।२८

विरुद्धहेत्वाभास—

विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् ॥२९॥

हिंदी—जिस हेतुका अविनाभावसंबंध (व्याप्ति) साध्य से विपरीतके साथ निश्चित हो उसै विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं जैसा शब्द परिणामी नहि है क्योंकि कृतक है यहां पर कृतकत्व हेतुकी व्याप्ति अपरिणामित्व से विपरीत परिणामित्व के साथ है इसलिये कृतकत्व हेतु विरुद्धहेत्वाभास कहा जाता है ॥२९॥

बंगला—ये हेतुर आविनाभावसंबंध [व्याप्ति] साध्येर विपरीतेर सहित निश्चित हय, ताहाके विरुद्ध हेत्वाभास वले येमन शब्द अपरिणामी केनना ताही कृतक । एस्थेले अपरिणामित्वेर विपरीत परिणामित्वेर सहित कृतकत्व हेतुर व्याप्ति आछे, सुतरां कृतकत्वके विरुद्ध हेत्वाभास बला याय ॥२९॥

विपक्षेप्यविरुद्धवृत्तिरनैकांतिकः ॥३०॥

हिंदी—जो हेतु पक्ष सपक्ष विपक्ष तीनोंमें रहे उसै अनैकांतिक कहते है ॥३०॥

बंगला—ये हेतु पक्ष सपक्ष ओ विपक्ष एइ तिनटीरइ थाके तहाके अनैकांतिक वला हय ॥३०॥

निश्चितविपक्षवृत्तिका उदाहरण-

निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत् । आकाशे नित्येप्यस्य निश्चयात् ॥३१॥३२॥

हिंदी—जो हेतु विपक्षमें निश्चितरूपसे रहै उसै निश्चित

वृत्ति अनैकांतिक कहते हैं जिसप्रकार शब्द अनित्य है क्योंकि प्रमेय है जैसे घड़ा । यहां पर प्रमेयत्व हेतु निश्चित विपक्ष वृत्ति अनैकांतिक है क्योंकि नित्यपदार्थ आकाशादि विपक्षमें निश्चयरूपसे रहता है ॥३१॥३२॥

बंगला–ये हेतु विपक्षे निश्चितभाव थाके ताहाके निश्चय वृत्ति अनैकांतिक वले । येमन शब्द अनित्य केनना उहा प्रमेय येमन घट । एस्थल प्रमेयत्वहेतु निश्चितविपक्षवृत्ति अनैकांतिक ये हेतु नित्यपदार्थ आकाशादिरूप विपक्षे ओ प्रमेयत्व निश्चित रूप आछे ॥३१॥३२॥

शंकितविपक्षवृत्तिका उदाहरण—

शंकितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात् । सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात् ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

हिंदी—जो हेतु विपक्षमें संशयरूपसे रहे उसै शंकितवृत्ति अनैकांतिक कहते हैं जिस प्रकार सर्वज्ञ नहिं है क्योंकि बोलने वाला है यहां पर वक्तृत्व हेतु शंकितविपक्षवृत्ति अनैकांतिक हैं क्योंकि एक जगह सर्वज्ञत्व और वक्तृत्व रहसकते हैं सर्वज्ञत्व वक्तृत्वका विरोध नहिं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

बंगला—ये हेतु विपक्षे संदिग्ध भावे आछे ताहाके शंकितवृति अनैकांतिक वले । येमन सर्वज्ञ नाइ ये हेतु वक्तृत्व आछे । एखाने वक्तृत्व हेतु शंकित विपक्षवृत्ति अनैकांतिक ।

कारण सर्वज्ञत्व ओ वक्तृत्व एकस्थल थाकिन पार । एतदुभयेर विरोध नाइ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अकिंचित्करहेत्वाभास-

सिद्धे पूत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिंचित्करः । सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात् । किंचिदकरणात् । यथानुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किंचित्कर्तुमशक्यत्वात् । लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

हिंदी—जो साध्य स्वयं सिद्ध हो अथवा प्रत्यक्ष आदिसे बाधित हो उस साध्यकी सिद्धिके लिये यदि हेतुका प्रयोग किया जाय तो वह हेतु कुछ न करनेकेकारण अकिंचित्कर हेत्वाभास कहा जाता है जैसे शब्द, कानसे सुना जाता है क्योंकि वह शब्द है यहां पर शब्दमें श्रावणत्व स्वयं सिद्ध है इसलिये शब्दमें श्रावणत्वकी सिद्धिकेलिये प्रयुक्त शब्दत्व हेतु अकिंचित्कर हेत्वाभास कहा जाता है । क्योंकि यह हेतु यहां कुछ करता नहिं । (इसे सिद्धिसाध्यवाले अकिंचित्कर हेतुका उदाहरण समझना चाहिये) । जिसप्रकार अग्नि शीतल है क्योंकि वह द्रव्य है यहां पर अग्निकी शीतलता प्रत्यक्षबाधित है इसलिये द्रव्यत्व हेतु, कुछ भी न करनेसे अकिंचित्कर हेत्वाभास कहा जाता है (सिद्धसाध्य अकिंचित्कर हेत्वाभास-

व्यतिरेकविकलका दृष्टांत इंद्रियसुख है क्योंकि अमूर्तत्वरूप साधन का व्यतिरेक मूर्तत्व होता है और वह इंद्रियसुखमें नहिं रहता एवं उभय व्यतिरेकविकलका दृष्टांत आकाश है क्योंकि पौरुषेयत्व मूर्तत्व दोनों ही नहिं रहते । तथा जो अमूर्त नहिं है वह अपौरुषेय भी नहिं है इसप्रकार व्यतिरेक दृष्टांत भी दृष्टांताभास कहा जाता है अर्थात् व्यतिरेकमें पहले साध्याभाव और पीछे साधनाभाव कहा जाता है । यहां पर पहले साधनाभाव और पीछे साध्याभाव कहा गया है इसलिये यह व्यतिरेक दृष्टांताभास है ॥४४।४५॥

बंगला—व्यतिरेकदृष्टान्ताभास तीन प्रकार,—साध्यव्यतिरेकविकल, साधनव्यतिरेकविकल एवं साध्यसाधनोभय व्यतिरेकविकल । यथा शब्द अपौरुषेय केननां ताही अमूर्त्त एइ उदाहरणइ साध्यव्यतिरेकविकलेर दृष्टान्त, केननां अपौरुषेयत्व रूप साध्येर व्यतिरेक पौरुषेयत्व परमाणुते थाकेना । साधन व्यतिरेक विकलेर दृष्टान्त इन्द्रिय सुख, केनना अमूर्तत्व रूप साधनेर व्यतिरेक (अभाव) मूर्त्तत्व इन्द्रियसुखे थाकेना एवं उभय व्यतिरेक विकलेर दृष्टान्त आकाश केनना पौरुषेयत्व मूर्त्तत्व उभयइ आकाश थाकेना । एइ रूपे ये अमूर्त्तनइ ताहा अपौरुषेय ओ नहे एइरूप व्यतिरेक दृष्टान्त ओ दृष्टान्ताभास । केनना व्यतिरेक प्रथम साध्याभाव ओ परे साधनाभाव

शब्दोऽमूर्त्तत्वादिंद्रियसुखपरमाणुघटवत् विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तं । विद्युदादिनातिप्रसंगात् ॥४०।४१।४२।४३।

हिंदी—अन्वयदृष्टांताभास तीन प्रकारका है साध्य विकल साधनविकल और साध्यसाधनउभयविकल । यथा—शब्द अपौरुषेय है-किसीपुरुष द्वारा नहिं कियागया है क्योंकि वह अमूर्त है जैसा इंद्रियसुख परमाणु और घट ॥ अर्थात् यहां पर इंद्रिय सुख साध्यविकल दृष्टांत क्योंकि इंद्रिय सुख अपौरुषेय नहि है पुरुषकृतही है । परमाणु साधन विकल दृष्टांत है क्योंकि परमाणुमें रूप रस गंध आदि रहते हैं इस लिये वह मूर्त्त है अमूर्त नहि और घट उभय विकल है क्योंकि घट पुरुष कृत और मूर्त है इसलिये उसमें अपौरुषेयत्व साध्य एवं अमूर्तत्व हेतु दोनोंही नहि रहते । यहां साध्य विकल आदिके क्रमसे उदाहरण समझलेना चाहिये तथा इसी उपर्युक्त अनुमानमें जो २ अमूर्त होता है वह २ अपौरुषेय होता है एसी व्याप्ति है परन्तु जो २ अपौरुषेय होता है वह २ अमूर्त होता है ऐसी उल्टी व्याप्ति दिखाना भी अन्वयदृष्टांताभास कहाजाता है क्योंकि विजलीसे व्यभिचार होजाता है अर्थात् विजलीमें अपौरुषेयत्व तो रहता है अमूर्तत्व नहिं रहता ॥ ४०।४१।४२।४३॥

बंगला—अन्वयदृष्टान्ताभास तिन प्रकार-साध्य विकल साधन विकल ओ साध्यसाधनोभय विकल । यथा ' शब्द

अपौरुषेय येहतु अमूर्त येमन इंद्रिय सुख, परमाणु ओ घट । एखाने इंद्रिय सुख, साध्यविकल दृष्टान्त केनना इंद्रियसुख अपौरुषेय नहे, प्रत्युत ताही पुरुषसंपाद्यइ हय । परमाणु साधन विकल दृष्टान्त केनना परमाणुते रूप रसादि थाकाय ताही मूर्त्त द्रव्यइ, अमूर्त नहे । घट उभयविकल केंनना ताहा पौरुषेय एवं मूर्त्त पदार्थ । अपौरुषयत्व रूप साध्य वा अमूर्त्तत्व रूप साधन घटे नाइ । एइ दृष्टान्तत्रये यथाक्रमे साध्य विकलतादि बुझिया लइवे । उपर्य्युक्त अनुमाने यैये अमूर्त्त सेसे अपौरुषेय इहाइ वस्तुतः अन्वय व्याप्ति, किन्तु यदि एरुप व्याप्तिना देखाइया यये अपौरुषेय सेसे अमूर्त्त एरुप व्याप्ति देखाइ तबे तहा अन्वय दृष्टान्ताभास कथिते हएवे, केनना एइ व्याप्तिते विद्युत् अन्तर्भावे व्यभिचार हइवे । विद्युत् अपौरुषेय किन्तु ताहा अमूर्त्त नहे ॥४०-४३॥

व्यतिरेकसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विंद्रियसुखाकाशवत् विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयं ॥४४।४५॥

हिंदी—व्यतिरेकदृष्टांताभासके तीन भेद है साध्य व्यतिरेकविकल, साधनव्यतिरेकविकल एवं साध्य साधन उभय व्यतिरेक विकल । यथा—शब्द अपौरुषेय है क्योंकि अमूर्त है इस उक्त उदाहरणमें ही साध्य व्यतिरेक विकल दृष्टांत है क्योंकि अपौरुषेयत्व रूपसाध्यका व्यतिरेक (अभाव) पौरुषेयत्व होता है और वह परमाणुमें नहिं रहता । साधन

का दृष्टांत स्वरूप यह प्रत्यक्षबाधित आकिंचित्करहेत्वाभासका उदाहरण है) तथा यह अकिंचित्कर हेत्वाभासकास्वरूप वही निर्दिष्ट होता है जहां हेतुके लक्षणकी छानवीन की जाती है वादकाल में नहिं क्योंकि वाद में यदि व्युत्पन्न द्वारा दुष्टपक्षका प्रयोग हो जायेगा तो उस पक्षके दुष्ट होनेसे उसका प्रयोग भी दुष्ट ही समझा जायगा ॥३५॥३६॥३७॥३८॥३९॥

बंगला—ये साध्य स्वयंसिद्ध वा प्रत्यक्षादि बाधित ऐ साध्येर सिद्धिर जन्य हेतु प्रयोग कारले ताहाते कोन फलइ हयना सुतरां ताहां आकिंचित्करहेत्वाभास कथित हय । 'येमन शब्द श्रवणग्राह्य कारण उहा शब्द' । ऐ स्थल शब्देर श्रावणत्व स्वयंसिद्ध उहा साधन कारते हेतु प्रयोग व्यर्थ सुतरां उहाके अकिंचित्कर कहा याय । प्रत्यक्षादि बाधितस्थल आकिंचित् कर हेत्वाभास येमन 'अग्नि शीतल केनना उहा द्रव्य येमन जैसे', एस्थल अग्निर शैत्य प्रत्यक्षबाधित हओयाय हेतु प्रयोग द्वाराय ओ इहा सिद्ध हयना सुतरां ऐ स्थल हेतु प्रयोग अकिंचित्करहेत्वाभास हइल । एइ अकिंचितकर हेत्वाभास दोष चतुर लक्षण निरूपण कालेइ निर्दिष्ट हय, वादकाले नहे, कारण वादकाले व्युत्पन्न लोक द्वारा यदि दुष्ट पक्षेर उल्लेख हय तबइ ताहार प्रयोग ओ दुष्ट प्रमाणित हय ॥३५।३९॥

दृष्टांताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः । अपौरुषेयः

हय किन्तु ऐ स्थल प्रथमे साधनाभाव परे साध्याभाव बला हइयाछे ॥३४॥४५॥

बालप्रयोगाभासः पंचावयवेषु कियद्धीनता । अग्निमानयं देशो धूमवत्त्वात् यदित्थं तदित्थं यथा महानसः । धूमवांश्चायमिति वा । तस्मादग्निमान् धूमवांश्चायं । स्पष्टतया पक्षता पूतिपक्षेरयोगात् ॥४६॥४७॥४८॥४९॥५०॥

हिंदी—उपर्युक्त प्रतिज्ञा हेतु आदि पांच अवयवोंमें यदि एक भी अवयव कम होगा तो वह बालप्रयोगाभास कहा जायगा । जिस प्रकार इस देशमें अग्नि है क्योंकि यहां धूम दीखता है जहां धूम होता है वहां नियमसे अग्नि होती है जैसा रसोईघर, यहां पर प्रतिज्ञा हेतु और उदाहरण इन तीन ही अवयवोंका उल्लेख किया गया है इसलिये यह बाल प्रयोगाभास है । अथवा इन्ही तीन अवयवोंके साथ 'वैसा यह भी धूमवाला है' यह चतुर्थ अवयव (उपनय) जोड़ कर चार अवयवोंका उल्लेख भी बालप्रयोगाभास है । तथा होना तो चाहिये दृष्टांतके पीछे उपनय और उसके पीछे निगमनका प्रयोग, किंतु वैसा न कर उल्टाप्रयोग-अर्थात् पहिले निगमनका और पीछे उपनयका प्रयोग करना भी बालप्रयोगाभास है जैसा—इसीलिये यह अग्निवाला है' 'और यह भी धूमवाला है (यहां पर पहिले निगमनका प्रयोग और पीछे उपनयका प्रयोग

किया गया है) क्योंकि उपर्युक्त अवयवोंसे निस्संशय साध्य का ज्ञान नहिं होता ॥४६॥४७॥५८॥४९॥

बंगला—उर्पयुक्त प्रतिज्ञा हेतु आदि पञ्च अवयवेर मध्ये यदि एकटी ओ कम हय तवे उहा बालप्रयोगाभास वलिया कथित हय । येमन एइ देश अग्नि आछे केनना एस्थाने धूम देखा याइछे यखाने धूम याके सेखाने निश्चितइ अग्नि थाके येमन महानस (पाकशाला) । एखाने प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण एइ तिन अवयवेर उल्लेख करा हइयाछे एइजन्य इहाबाले प्रयोगाभास । अथवा एइ तिन अवयवेर सहित एइ स्थाने ओ धूमयुक्त एइ चतुर्थ अवयव (उपनय) संयुक्त करिले ओ उहा बालप्रयोगाभास हइवे । दृष्टान्तेर पर उपनय तत् पश्चात् निगमनेर उल्लेख करा रीतिसंगत कोनओ ताहा नाकरिया विपरीत भावे प्रथम निगमन ओ तत्पर उपनयेर उल्लेख करा हय तब ताहा ओ बालप्रयोगाभास हइवे । यथा ' एजन्य इहा अग्निमति' एइ निगमन वलिया यदि पर ' इहाधूमयुक्त' एइ विपरीतभावे वलाते एइ स्थाने अवयव द्वारा निःसंशयितरूप साध्येर ज्ञान हइलना ॥४६॥५९॥

रागद्वेषमोहाकांतपुरुषवचनाज्जातमागाममागमाभासं । यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः संति धावध्वं माणवकाः । अंगुल्यग्र हस्तियूथशतमस्ति इति चाविसंवादात् ॥५१॥५२॥५३॥५४॥

हिंदी—जो आगम रागी द्वेषी और मोहीपुरुषके वचनसे

उत्पन्न हो उसे आगमाभास कहते हैं जैसा बालको दौड़ो नदीके किनारे बहुतसे लाडू रक्खे हैं । तथ अंगुलीअग्रभागमें सैकड़ो हाथियोंका समूह रहता है । क्योंकि रागी द्वेषी आदिके बचनों में विसंवाद अर्थात् पदार्थका वास्तविक ज्ञान नहिं होता ।

बंगला—ये आगम रागी द्वेषी अथवा मोही व्यक्तिद्वारा जनित ताहा आगमाभास । येमन बालको नदी तीरे मोदकराशि आछे शीघ्र दौड़ाइया याओ, वा अंगुलिर अग्रभागे हस्तिशत शत रहियाछे एसकते आगमास, केनना रागीद्वेषरि कथाद्वारा-पदार्थेर वास्तविक ज्ञान हयना ॥५२॥५४॥

पूत्यक्षमेवैकं पूमाणमित्यादिसंख्याभासं । लौकायतिकस्य पूत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्चासिद्धरतद्विषयत्वात् । सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानांपत्यक्षानुमानागमोपमार्थापत्त्यभावैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिवत् । अनुमानोदस्तद्विषयत्वे पूमाणांतरत्वं । तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे पूमाणांतरत्वं । अपूमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् । पूतिभासभेदस्य च भेदकत्वात् ॥५५॥५६॥५७॥५८॥५९॥६०॥

हिंदी—केवल एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण है । इत्यादि कहना संख्याभास है । क्योंकि प्रत्यक्षज्ञान परलोक और परज्ञान आदिका विषय नहिं करता और जो ज्ञान जिसको नहिं जानता वह उसका निषेध और विधान भी नहिं करसकता इसलिये नास्तिकमतमें न परलोकका निषेध हो सकता है और न पर

बुद्धि आदिकी सिद्धि हो सकती है । जैसा कि प्रत्यक्ष अनुमान आगम उपमान अर्थापत्ति और अभाव इन छै प्रमाणोंमें प्रत्यक्ष अनुमान आदिको लेकर एक २ अधिक प्रमाणमानने वाले बौद्ध सांख्य नैयायिक प्राभाकर और (वैदान्तिको व) भट्टको प्रत्यक्ष आदिमें अंतर्भूत न होनेसे व्याप्ति ज्ञान जुदा ही मानना पड़ता है एवं व्याप्तिके जुदेमाननेसे ' दोही प्रमाण हैं ' अथवा ' तीन ही प्रमाण है यह उनका कहना संख्याभास कहा जाता है । यदि चार्वाक कहै अनुमानसे पर लोक आदिका निषेध करैगे तो उसै प्रत्यक्षमें जुदा अनुमान प्रमाण स्वीकार करना पड़ेगा एवं प्रत्यक्षही एक प्रमाण है यह उनका कथन विलकुल संख्याभास सिद्ध हो जायगा । जैसा कि—बौद्ध आदि व्याप्ति की सिद्धिके लिये तर्क एक जुदाही प्रमाण मानते हैं और तर्क माननेसे प्रमाण दोही अथवा तीन आदिही है यह कथन उनका संख्याभास समझा जाता है । यदि बौद्ध आदि यह कहै तर्कको स्वीकारतो करते हैं परंतु वह प्रमाण नहिं यह भी उनका कथन मिथ्या है क्योंकि जो प्रमाण नहिं माना जाता उससे वस्तु की व्यवस्था कदापि नहिं होसकती यदि तर्क प्रमाण न माना जायगा तो उससे कदापि व्याप्तिकी सिद्धि नहीं हो सकती । तथा तर्क आदि को प्रमाणमाननेमें दूसरा यह भी हेतु है—कि जिनका प्रतिभास भिन्न २ होता है वे जुदे प्रमाण माने जाते जाते हैं प्रत्यक्ष आदिसे तर्क आदिका प्रतिभास विलक्षण है इस

लिये प्रत्यक्ष आदिसे तर्क आदि प्रमाण जुदे ही है ॥५५।५६।५७।५८।५९।६०॥

बंगला—'केवल एक प्रत्यक्षइ प्रमाण' इहा वला संख्याभास । केनना प्रत्यक्षज्ञान परलोक बा परकीयज्ञानके विषय करे ना, और याहार ये ज्ञान विषय हयना ताहार सेज्ञानेर विधि वा निषेध करा सम्भव हयना, एइ जन्य नास्तिकमते परलोकेर निषेध हइते पारेना । और परकीय बुद्धि प्रभृतिर सिद्धि हइते पारेना, येमन प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति ओ अभाव एइ छय प्रमाणेर मध्ये प्रत्यक्ष अनुमान आदिके नियत एक एकटी अधिक प्रमाण स्वीकारकारी बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, प्रभाकर ओ जैमिनीयेर मतोक्त प्रत्यक्ष आदिते अंतर्भुक्त ना हओयाय व्याप्तिज्ञानके ओ अतिरिक्त मानिते हइवे, एइरुपे व्याप्तिज्ञानके अतिरिक्त मानिते हइले "दुइटीइ प्रमाण" "तिन टीइ प्रमाण" एकरूप संख्या निर्देश करा ओ संख्याभास हइया दाडाय । यदिचार्वाक वल ये अनुमान द्वारा परलोक प्रभृतिर निषेध करिव तबे ताहार प्रत्याक्षातिरिक्त अनुमान मानिते हय एवं इहा हइले 'प्रत्यक्षइ एकमात्र प्रमाण' ताहार एइ कथाय निश्चयइ संख्याभास हइया परे । एइरुप बौद्धेर ओ व्याप्ति सिद्धिर जन्य अतिरिक्त प्रमाण तर्क मानित हइवे । उहा मानिले ताहार 'दुइटीइ प्रामाण' एइ कथाते संख्याभास हइल । यदि बौद्ध प्रभृति वलेन ये तर्क मानि किन्तु उहा प्रमाण नहे तबे

ताहा असंगत, केनना ये निजे प्रमाण नहे ताहा द्वारा वस्तुव्यवस्था कखन ओ हइते पारेना । तर्क प्रमाण ना हइते तद्द्वारा व्याप्ति सिद्धि कखन ओ संभव नहे । आर तर्के आदिर प्रमाणत्वे इहा ओ अपर युक्ति ये याहार प्रतिभास भिन्नरूपे हय ताहा अतिरिक्त प्रमाण रूपे गण्य, प्रत्यक्ष आदि हइते तर्कप्रभृतिर प्रतिभास विलक्षण, सुतरां उहा अतिरिक्त प्रमाण रूपे गण्य हइते पारे ॥ ५५–६० ॥

विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतंत्रं । तथाऽप्रतिभासनात् कार्याकरणाच्च । समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् । परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात् । स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात्पूर्ववत् ॥६१।६२।६३।६४।६५॥

हिंदी—प्रमाणका विषय केवल सामान्यही है अथवा विशेष है वा सामान्य और विशेष दोनों प्रमाणके स्वतंत्र विषय हैं यह कहना विषयाभास है । क्योंकि पदार्थमें केवल सामान्य आदि मालूम नहिं पड़ते और केवल सामान्य आदि से कोई अर्थक्रिया भी नहीं बन सकती । कहोगे-केवल सामान्य आदिके माननेसे भी अर्थक्रिया हो जाती है तो वहांपर दो प्रश्न उपस्थित होते हैं-समर्थ होकर केवल सामान्य आदि क्रिया करते हैं कि असमर्थ ? यदि समर्थ होकर कार्य करते हैं तो हमेशह कार्यकी उत्पत्ति होनी चाहिये क्योंकि केवल सामान्य आदि कार्यकरनेमें किसी दूसरेकी अपेक्षा नहिं

रखते । यदि सामान्य आदि कार्यकरनेमें सहकारीकी अपेक्षा करैंगे तो वे परिणामी ठहरेंगे क्योंकि वे सहकारी कारणोंकी सहायता विना अकेले कार्य नहिं करते किंतु उनकी सहायता से करते हैं, यह बात बिना परिणामी माने बन नहीं सकती यदि कहोगे कि-असमर्थ होकर सामान्य आदि कार्य करते हैं तो यह ठीक नहीं । क्योंकि जो असमर्थ है वह जैसा सहकारी कारणोंके आगमनके पूर्व कुछ नहिं करसकता उसीप्रकार सहकारी कारणोंके मिलनेपर भी कुछ नहिं कर सकता, सामान्य आदि भी असमर्थ माने हैं इसलिये वे भी कुछ काम नहिं कर सकते ॥

बंगला—प्रमाणेर विषय केवल सामान्यइ हय वा केवल विशेषइ हय अथवा सामान्य विशेष उभयइ स्वतंत्र प्रामाणिक विषय हय, इहा बला विषयाभास । केनना पदार्थेर मध्ये केवल सामान्य प्रभृतिर भान हय ना । आर केवल सामान्य आदिर द्वारा कोन अर्थक्रियाओ हइते पारे ना । यदि वल केवल सामान्य आदि मानिलेओ अर्थक्रिया हइया याय तबे से स्थले दुइटी प्रश्न-एइ ये केवल सामान्य आदि समर्थ हइया अर्थक्रिया करे, नाकि असमर्थ हइया ? यदि समर्थ हइया कार्य करे तवे सर्वदा कार्योत्पत्ति हउक । केनना केवल सामान्य आदि द्वारा कार्य्य करिते त आर द्वितीय किछुर अपेक्षा नाइ । यदि अन्य सहकारीर अपेक्षा करे, ताहा हइले उहा परिणामी

विवेचित हइवे केनना सहकारी कारणेर सहायता छाडा कार्य करे ना एवं सहकारीर सहायताय करे, एइ कथा परिणाम स्वीकार ना करिले बला याइते पारे ना । यदि बल ये असमर्थ हइया सामान्य आदि कार्य्य करे तवे ताहाओ युक्तियुक्त हइल ना । कारण ये असमर्थ, से येमन सहकारी कारणेर संघटनेर पूर्वे किछु करिते पारे ना, तेमन सहकारी कारणेर संघटनेर परेओ किछुं करिते पारिबे ना, सामान्य आदि असमर्थ हइले से कोन भावेइ काज करिते पारिबे ना ॥ ६२–६५॥

फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा । अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः । व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलांतराद् व्यावृत्त्याऽफलत्वप्रसंगात् । प्रमाणांतराद् व्यावृत्त्येवाप्रमाणत्वस्य । तस्माद्वास्तवो भेदः । भेदे त्वात्मांतरवत्तदनुपपत्तेः समवायेऽतिप्रसंगः ॥६६।७७।७८।६९।७०।७१।७२॥

हिंदी—प्रमाणसे फल भिन्न ही है अथवा अभिन्न ही है यह कहना फलाभास है । यदि प्रमाणसे फलका सर्वथा अभेद ही मानलिया जायगा तो यह प्रमाण है और यह फल है ऐसा व्यवहार ही न बन सकेगा, यदि यहां पर यह कहा जाय कि अभेद मानने पर भी अफलकी व्यावृत्तिसे फलकी कल्पना हो जायगी जैसा कि बौद्ध मानते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि अफलकी व्यावृत्तिसे फलकी कल्पनाकी तरह दूसरे किसी समानजातीय फलकी व्यावृत्तिसे सर्वथा अफलकी ही कल्पना

हो जायगी जैसा कि बौद्ध-समानजातीय दूसरे प्रमाणकी व्यावृत्तिसे अप्रमाण स्वीकार करते हैं। एवं सर्वथा अफलकी कल्पनासे फल भी संसारमें कोई पदार्थ है यह बात ही सिद्ध न हो सकैगी, इसलिये मानो कि प्रमाण और फलका भेद वास्तव भेद है। यहां पर भी सर्वथा भेद नहिं कह सकते क्योंकि यदि सर्वथा भेद मान लिया जायगा तो जैसा दूसरे आत्माके प्रमाणका फल हमसे भिन्न है उसीप्रकार हमारी आत्माके प्रमाणका फल भी हमसे भिन्न पड़ जायगा और ऐसी स्थितिमें वह फल हमारे ही प्रमाणका है यह बात नहिं बन सकती। कहोगे कि--यद्यपि प्रमाण और फल भिन्न हैं तथापि समवायसंबंधसे जिस आत्मामें प्रमाण रहेगा फल भी समवायसंबंधसे उसीमें रहेगा सो भी ठीक नहीं, क्योंकि समवाय माननेपर भी अतिप्रसंग दोष आता है अर्थात् समवायको एक नित्य और व्यापक माना गया है इस लिये इसी आत्मामें प्रमाण व फल समवाय संबंधसे रहता है इस दूषणका निवटेरा नहिं हो सकता ॥६६-७२॥

बंगला—प्रमाण हइते फल भिन्न वा अभिन्न इहा बला फलाभास। यदि प्रमाण हइते फलेर सर्वथा अभेद मानिया लओया जाय तबे उहाओ प्रमाणइ हइया पड़िल, सुतरां फल बलिया बला असंगत। ए स्थले बौद्धेर मत यदि बलि ये अभेद हइलेओ अफलेर व्यावृत्तिरूप फलेर कल्पना हइबे, ताहा ओ ठिक नहे, केननां अफल व्यावृत्ति द्वारा फलेर कल्पनार

मत द्वितीय आर एकटी समान जातीय फलेर व्यावृत्तिद्वारा अफलेरओ कल्पना करा याय। येमन बौद्ध समानजातीय प्रमाणेर व्यावृत्तिद्वारा अप्रमाण स्वीकार करेन। आर सर्वथा अफल कल्पना करिले जगते फल नामक जिनिस आछे इहाइ सिद्ध हइबे ना। एजन्य प्रमाण ओ फलेर भेद वास्तव भेदइ बलिते हइबे किंतु एखाने सर्वथा भेदओ वला याय ना केननां यदि सर्वथा भेद मानिया लओया याय तबे येमन द्वितीय आत्मार प्रमाणेर फल आमा हइते भिन्न, सेरूप आमार आत्मार प्रमाणफलओ आमाहइते भिन्न हइया पड़े। आर एइ रीतिते 'ऐ फल आमारइ प्रमाणेर फल' इहा बलाओ अशक्य हइया उठिवे। बलिते पार ये 'यदिओ प्रमाण ओ फल भिन्न, तथापि समवाय संबंधे ये आत्माते प्रमाण थाकिबे सेइ आत्मातेइ समवायसंबंधे फलओ थाकिवे।' ए कथाओ ठिक नहे केननां समवाय मानिलेओ अतिप्रसंग दोष हय अर्थात् समवायके एक नित्य ओ व्यापक माना हइया छे। सुतरां एइ आत्माते प्रमाण वा फल समवाय संबंधे थाके एइ दोषेर निवृत्ति हइते पारे ना॥ ६६-७२॥

प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भाषितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च ॥७३॥

हिंदी—प्रथम वादीने प्रमाणका प्रयोग किया और प्रतिवादीने उस प्रमाणको दुष्ट बनादिया उससमय यदि वादी प्रति-

वादी द्वारा दिये दोषको हटा देता है तब तो वह प्रमाण वादीकेलिये साधन और प्रतिवादीके लिये दूषण है। तथा वादी पहले साधनाभासका प्रयोग करै और प्रतिवादी उसे दुष्ट बनादे एवं पीछे वादी उस दोषको न हटा सके तो वह साधनाभास वादीके लिये दूषण और प्रतिवादीकेलिये भूषण हो जाता है। यही स्वपक्षके साधन और परपक्षके दूषणकी व्यवस्था है॥७३॥

बंगला—प्रथम वादी प्रमाणेर प्रयोग करिल, परे प्रतिवादी ऐ प्रमाणेर दोष देखाइल, ऐ समय यदि वादी प्रतिवादी कथित दोषेर निराकरण करिते पारेन तबेइ ऐ प्रमाण वादीर पक्षेर साधक एवं प्रतिवादीर दूषण हइबे। आर यदि वादी प्रथम साधनाभासेर प्रयोग करे, परे प्रतिवादी ऐ साधनाभासेर दोष देखाइया देय वादीओ यदि प्रतिवादिदर्शित दोषेर उद्धार ना करिते पारे तबे वादीर पक्षे ऐ साधनाभास दूषण एवं प्रतिवादीर पक्षे भूषण हइया याय। इहाइ स्वपक्षसाधन ओ परपक्षदूषणेर व्यवस्था॥ ७३॥

संभवदन्यद्विचारणीयं॥ ७४॥

हिंदी—इसप्रकार इसग्रंथमें प्रमाण प्रमाणाभासादिका लक्षण कह दिया गया इनसे अतिरिक्त नय और नयाभास आदिका स्वरूप है वह भी दूसरे २ ग्रंथोंसे विचारपूर्वक जान लेना चाहिये॥ ७४॥

बंगला—एइ प्रकारे एइ ग्रंथे प्रमाण ओ प्रमाणभासा-

दिर लक्षण बला गेल, इहा हइते अतिरिक्त नय ओ नयाभासादिर स्वरूप याहा आछे ताहाओ अन्यान्य ग्रंथ हइते विचारपूर्वक जानिया लइबे॥ ७४॥

परीक्षामुखमादर्शं हेयोपादेयतत्त्वयोः।
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्व्यधां॥ १॥

इति परीक्षामुखं समाप्तं।

हिंदी—परीक्षा प्रवीणमनुष्यकी तरह मुझ बालकने हेय (त्यागने योग्य) उपादेय (ग्रहणकरने योग्य) तत्त्वोंको अपने सरीखे बालकोंको उत्तमरीतिसे समझानेके लिये दर्पणके समान इस परीक्षा मुखग्रंथकी रचना की है। अर्थात् परीक्षाकुशल मनुष्य जैसा प्रारंभ किये कामको पूर्णकरके मानता है उसीप्रकार मैंने इसे पूर्ण किया है। तथा दर्पण जैसा अच्छे बुरे सब पदार्थों का प्रकाशक है उसीप्रकार यह ग्रंथ भी हेयोपादेय बुरे पदार्थोंका बतलानेवाला है॥

इस प्रकार परीक्षामुखसूत्रोंका बालावबोध
हिन्दी अनुवाद समाप्त हुवा॥

बंगला—आमि परीक्षाप्रवीण मनुष्येर मत हेय (त्याज्य) ओ उपादेय (ग्राह्य) तत्त्वेर ज्ञानदान करिवार अभिप्राये मंदबुद्धिर जन्य आदर्शभूत एइ परीक्षामुख ग्रन्थेर रचना करिलाम। अर्थात् परीक्षा कुशल पंडित येमन प्रारब्ध कार्येर पूर्णता संपादन करे, सेइरूप आमिओ एइ ग्रंथ संपादन कार्य्य संपन्न

करिलाम । दर्पण येमन सब पदार्थेर स्वरूप प्रकाशक सेइ ग्रंथओ सदसत् पदार्थेर निर्णायक हइवे ॥

इति परीक्षामुख सूत्रेर बंगानुवाद समाप्त हइल ।